अनुक्रमणिका

विषय-सूची — पृष्ठ-संख्या

१. श्री राधाष्टमी-महामहोत्सव.....०३

२. भक्त-प्रेमकारिणी 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा'...०६

३. श्रीयुगलरस-कथा.....०८

४. श्रीकृष्ण-रसामृत.....;...१०

५. श्रीमद्भगवद्गीता.....;.१२

६. स्वार्थशून्यता से समर्था-रति.....;...१४

७. श्रीराधासुधानिधि.....१६

८. गोपी-गीत.....१८

९. भगवन्नाम-महिमा.....२०

१०. धाम-महिमा.....२२

११. भक्त-चरित्र.....२४

१२. गौ-महिमा.....२८

१३. प्रातःकालीन सत्संग.....३०

१४. 'मान मंदिर कला अकादमी' द्वारा
प्रस्तुत नाटिका- 'भक्त श्री रैदासजी'.....३१

श्रीराधाजन्म-बधाई

गावो गावो री बधायो, रानी कीरति के घर आज ||
रमक झमक के चलो भानुघर, सज धज के सब साज,
राजा श्री वृषभानु महल में, मंगल के भये काज |
गांम गांम ते आईं नारी, लोगन जुरे समाज,
धौंसा की धधकार सुनो, जहँ ठाढ़े हैं महाराज |
बीना वैन और सारंगी, महुवर हू रहे बाज,
कोउ नाँचैं कोउ हाँसी देवैं, कौन करे ह्वाँ लाज |
अनहोनी भई लली सोहनी, लोकन की सरताज,
जाके प्रगट होत बरसाने, सबके दुख गये भाज |
नन्दगाँव ते नन्द जसोदा, आये महल विराज,
कीरति जसुदा भेंटी जैसे, भेंटी हैं ब्रै गाज |
लाली ढिंग लाला पौढ़ायो, जोरी अति छवि छाज,
पलना में खेलैं और किलकैं, रूप के दोउ जहाज ||

संरक्षक- श्री राधामानबिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मान मंदिर सेवा संस्थान,

गह्वर वन , बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

(Website :www.maanmandir.org) (E-mail :ms@maanmandir.org)

mob. : 9927338666, 9837679558

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८ से ९ बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

(पत्रिका लेखन में यहाँ के संत व साध्वियों का विशेष सहयोग है पर वह त्याग के कारण नाम नहीं देना चाहते हैं)

प्रकाशकीय

भगवदावतरण का उद्देश्य भवाटवी में भ्रमणशील जीवों को 'भगवान् का वात्सल्य' प्राप्त कराना ही है | जघन्य कर्मों के परिणामस्वरूप जीव अनन्तकाल तक यम यातनाओं में अनंत कष्ट पाता है; जो प्रभु समस्त जीवों के वास्तविक अवलम्ब हैं, उनका आश्रय छोड़कर मिथ्या जगत की असद् वासनाओं के चक्कर में वह अपने आश्रय से आश्रयहीन हो जाता है | प्रभु अवतरित होते हैं और मानवोचित लीलाएँ करते हैं ताकि सहज में उन लीलाओं को गाकर जीव पुनः अपने मूल अवलम्ब को प्राप्त कर सके | यद्यपि वह परात्पर तत्त्व बड़े-बड़े योगियों के लिए भी दुर्लभ है परन्तु भक्तिभाव से उनको गाया जाय तो वे सहज सुलभ हो जाते हैं –

"नाच गाय रासहि मिले, करि वृन्दावन वास |"

(श्रीहरिरामव्यासजी)

अखिलकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्ण की भी जो आराध्या हैं, वे श्रीराधारानी बाँह फैलाए खड़ी रहती हैं कि मुझसे विलग हुए जीव शीघ्र मेरी शरण में आयें, उन्हीं राधारानी का प्राकट्योत्सव श्रीधाम बरसाना में राधाष्टमी पर हुआ | लाखों भक्तों का बरसाना-आगमन, नृत्य-गान की धूम समस्त जीवों के लिए बड़ी प्रेरणास्पद है कि वे भी इस सुलभ साधन में अनुरक्त हों और अपने को धन्य बनाएँ |

इस अवसर पर पत्रिका मानमंदिर बरसाना का यह अंक पाठकों को अवश्य ही राधारसगान में प्रेरणाप्रद होगा |

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक, मान मन्दिर सेवा संस्थान

श्री राधाष्टमी-महामहोत्सव

(एक अनन्य रसिक की कथा)

श्रीबाबामहाराज द्वारा पदगायन (४ सितम्बर २०१८) से संग्रहीत

संकलनकर्ता – संतश्री भामिनीशरणजी, मानमंदिर, बरसाना

"जनम लियो राधा ने कीरति के बधाई आज |"

श्रीराधाजन्ममहोत्सव के अलौकिक अवसर पर रानी कीर्ति के दरवाजे एक अनन्य याचक (मँगता) आता है, जो पुरुष जाति से बधाई की भेंट नहीं लेता, यहाँ तक कि चाहे कृष्ण हों अथवा बलराम हों, चाहे नन्दजी हों अथवा वृषभानुजी हों, वह अनन्य राधारसिक उमा, रमा आदि देवियों से भी जन्मोत्सव की भेंट स्वीकार नहीं करता है | जिनकी कूँख में राधिका का आविर्भाव हुआ है, उन कीर्ति मैया के बारे में वह रसिक याचक कहता है –

कीरति मैया तेरी काया धन्य ||
जिनके कीरति कुँवरि प्यारी, तिन ते दानहिं लैहों |
तिनकी जूठन खाय तिनहिं के, चरनन माथो नैहौं ||

अष्टमहासखियों से मैं दान ले लूँगा, लाड़िलीजू की प्रेमाराधिकाओं की जूठन खाकर उन्हीं के चरणों में नतमस्तक होऊँगा |

"रानी कीरति द्वारे आयो मँगता एक अनन्य |"

कीर्ति मैया से दासियाँ कहती हैं कि हे रानी कीर्तिजी ! आपके द्वार पर एक अनन्य याचक आया है, जो कह रहा है – **तेरे कूंखन राधा आयी, तेरी काया धन्य |**
पुरुष जाति से दान न लैहों, ये ही मेरी टेक |
उमा रमा हू ते नहीं लैहों, यह व्रत मेरो एक ||

वृषभानु बाबा, नन्द बाबा बड़े उदार हैं किन्तु इनसे भी मैं दान नहीं लूँगा | कृष्ण के सखा भी उदार दाता हैं किन्तु मेरा नियम है कि मैं पुरुष जाति से दान नहीं लूँगा –

"भानु बबा और नन्द बाबा, इनके उदार सब भ्राता |"

भानु बाबा और नन्द बाबा के उदार भ्राता नौ भानु और नौ नन्द – ये सभी अतिशय उदार हैं | कृष्ण के आठ प्रमुख सखा हैं, वे भी बड़े दाता हैं किन्तु उनसे भी मैं दान नहीं लूँगा |

"कृष्ण सखन हू ते नहिं लैहों, यद्यपि सब हैं दाता |"

लोगों ने इस अनन्य याचक से पूछा कि जब तुम नन्दबाबा, वृषभानुबाबा, उनके भ्राताओं तथा श्रीकृष्ण-बलराम तक से कुछ नहीं ले रहे हो तो फिर किससे दान लोगे ?

तब वह राधिका-प्रेमी याचक बोला –

"ललिता,विशाखा, चम्पक, चित्रा, तुंगविद्या, इन्दुलेखा |
रंगदेवी, सुदेवी, महासखी, पूजौं इनहिं विसेखा ||"

मैं श्रीजी की सखीजनों (ललिता, विशाखा...आदि) से दान ले लूँगा क्योंकि इन्हें कीर्ति कुँवरि किशोरीजू विशेष प्रिय हैं |

बरसाने प्रगटीं राधा, पद सेवैं श्याम बिहारी |

श्रीराधारानी के चरणकमल बरसाने में प्रकट हुए, जिनकी सेवा स्वयं श्यामसुन्दर करते हैं |

होय बधाई राधा की जहँ, नाचैं सब नर-नारी |

जहाँ नर-नारी आज भी रासरसमय नृत्य करते हैं, वह परमरसमय धाम है - बरसाना |

दूरादपास्य स्वजनान्सुखमर्थकोटिं सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः |
वर्षन्तमेवसहजाद्भुतसौख्यधारां श्रीराधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ||

(श्रीराधासुधानिधि-३२)

सांसारिक सम्बन्धियों व करोड़ों सुख-सम्पत्तियों को दूर से ही छोड़ दूँगा और ज्ञान, योग, संयम, व्रत आदि साधनों का हमेशा के लिए परित्याग कर दूँगा (स्मरण भी नहीं करूँगा) | बरसाने धाम की रज को अपने शीश पर धारणकर तन-मन-वचन से श्रीधाम-सेवा करूँगा | श्रीधाम बरसाने की रज ही मेरा सर्वस्व है, इसके अतिरिक्त मैं किसी साधन को नहीं स्वीकार करूँगा |

"**ज्ञानयोग, संयम, साधन व्रत, नहिं देखैं भूलेहू | बरसाने की धूरि धरैं सिर, सेवैं तन दै मनहू |**" जो श्रीराधारानी का अनन्य चरणाश्रित है, वह मायिक वस्तुओं धनादि का संग्रह नहीं करता और न ही किसी से कुछ माँगता है, न किसी से आशा करता है |

कछू न संग्रह करौं न माँगौं, नहिं कछु आस लगाऊँ |
राधा नाम रटूँ राधा जस, सुनूँ राधिका ध्याऊँ |
तुच्छ विषय की कौन कहे, जब मुक्ति हूँ तज डारौं |
बरसाने के घूरे बसके, दिव्य लोक सब वारौं ||

घूरा उस स्थान को कहते हैं, जहाँ कूड़ा-करकट फेंका जाता है | याचक कहता है कि मैं बरसाने के घूरे पर निवास कर समस्त दिव्य लोकों का परित्याग कर दूँगा |

इसी प्रसंग से सम्बन्धित एक कथा आती है - अलीकिशोरीजी नामक बरसाने के एक अनन्य भक्त हुए हैं, इनकी स्त्री भी राधारानी की परम भक्ता थीं, अपने गृह पर इन भक्त दम्पत्ति को वैराग्य उत्पन्न हुआ और इन्होंने यह निश्चय किया कि अब हम लोग बरसाना में ही निवास करेंगे | अपनी धन-सम्पत्ति का त्याग करके इन्होंने बरसाने का आश्रय ग्रहण किया | बरसाने में श्रीजी के करकमलों से निर्मित, उनकी नित्य विहारस्थली गह्वरवन में निवास कर अलीकिशोरी जी और उनकी धर्मपत्नी ने अनन्यभाव से श्रीराधारानी का आराधन किया | सृष्टि का यह अकाट्य नियम है कि जन्म लेने वाले की एक दिन मृत्यु अवश्य होती है; इसी नियमानुसार एक दिन अलीकिशोरीजी की पत्नी किशोरी का निधन हो गया | वह स्त्री श्रीजी की परम भक्ता तथा अपने पतिदेव के भजनाराधन व बरसानावास की भी विशेष सहायिका थीं इसलिए उनकी संस्मृति में विरहावेश से व्याकुल होकर 'हा किशोरी ! हा किशोरी !! कहकर वह करुणक्रन्दन करने लगे | राधारानी का भी नाम किशोरी है तथा अलिकिशोरीजी की स्त्री का नाम भी किशोरी होने के कारण वह दोनों के ही विरहावेश से व्यथित होकर आर्त स्वर से विलाप कर रहे थे | गह्वरवन में सदा-सर्वदा विराजित श्रीराधिकाजी ने अपने भक्त की करुण पुकार सुनी तो श्यामसुंदर से कहा – "हे नन्दलाल ! कोई मेरा आह्वान कर रहा है, अत्यधिक दीनता के साथ करुण स्वर में मुझे पुकार रहा है |" श्यामसुन्दर बोले – "वह आपको नहीं बुला रहा है, उसकी स्त्री की मृत्यु हो गयी है, उसी के वियोग में पुकार रहा है |" करुणामयी किशोरीजू समझ गयीं कि नन्दलाल उस विरही भक्त की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं | अतः उन्होंने अपनी प्रिय सखी ललिता से कहा – "ललिते ! तू जाकर मेरी अन्तरंग लीलाभूमि गह्वरवन में 'किशोरी' नामोच्चारण कर रहे उस विरही भक्त पर कृपा कर |' स्वामिनीजू की आज्ञा से ललिताजी उस दिशा की ओर चल पड़ीं, जहाँ किशोरीअलीजी विलाप कर रहे थे | ललिताजी ने कृपापूर्वक अपने चरण उनके मस्तक पर रख दिये और पूछा – 'तू कौन है? इस प्रकार विलापपूर्वक 'किशोरी-किशोरी' नामोच्चारण कर किसको बुला रहा है?' अलीकिशोरी कुछ नहीं बोले, विरहावस्था में केवल रुदन ही करते रहे | ललिताजी ने पुनः कहा कि क्या किशोरी राधा के लिए क्रन्दन कर रहा है?' अलीकिशोरीजी – 'हाँ |' ललिताजी – 'क्या चाहता है?' अलीकिशोरीजी – 'राधे किशोरी के दर्शन करना चाहता हूँ |' ललिताजी – 'अच्छा तू बरसाने में जा और वहाँ घूरे (कूड़ा फेंकने के स्थान) पर तुझे एक पागल व्यक्ति दृष्टिगोचर होगा, वस्तुतः वह पागल नहीं है, वह सिद्ध महापुरुष वंशीअलीजी हैं, जो श्रीराधारानी के परम कृपापात्र हैं; उनके निकट पहुँचकर उनके चरणों को दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना, वह तुझे श्रीजी से मिला देंगे |' ललिताजी की आज्ञा से अलीकिशोरीजी बरसाना पहुँचे, वहाँ कूड़ेखाने पर देखा कि एक पागल बैठा हुआ है | उन्होंने उस पागल का स्वांग करने वाले महात्मा के चरण पकड़ लिये | प्रारम्भ में उन्होंने पागलपन का अभिनय कर अलीकिशोरीजी को हटाने का प्रयास किया, अपने हाथ-पैर से प्रहार करने लगे | अलीकिशोरीजी भी सुदृढ़ चट्टान की तरह अपनी अटूट निष्ठा पर कायम रहे और बोले – 'महाराज ! कितना भी प्रयत्न कर लो, मैं तो आपको छोड़ने वाला नहीं हूँ |' महात्मा वंशीअलीजी ने पूछा – 'तू क्या चाहता है?' अलीकिशोरीजी – 'राधारानी की कृपा चाहता हूँ |' वंशीअलीजी – 'बता, तुझको मेरे निकट किसने भेजा है ?' अलीकिशोरीजी – 'ललिताजी ने |' ललिताजी का परमानुग्रह देखकर महात्मा वंशीअलीजी ने इन्हें शिष्यत्व प्रदान कर इनका नामकरण किया –

'अलीकिशोरी' और ये जीवनपर्यन्त श्रीजी की रसमयी आराधना में निमग्न रहे, जिससे प्रसन्न होकर श्रीराधिकारानी ने साक्षात् दर्शन देकर इन्हें परमकृतार्थ किया | इसी प्रकार से श्रीजी की जन्म बधाई पर पधारे अनन्य प्रेमी याचक की परिपक्व भावनिष्ठा को देखकर मैया कीर्ति ने उसे परिपूर्ण किया –

सुनत बधाई कीरति मैया, कृपा करी मनमानी |
खोल दियो भंडार कृपा कौ, लली दिखाई रानी ||

"लाली राधा का दर्शन कराकर धन्यातिधन्य कर दिया |"

श्रीराधारानी का दर्शन व उनकी अनन्य प्रेममयी भक्ति की संप्राप्ति ही परमकृपा है | जो श्रीराधारानी का भक्त होता है, वह धन का संग्रह नहीं करता है, करोड़ों प्रकार के धन संग्रह का वह परित्याग कर देता है | योग-ज्ञानादि समस्त साधनों से निराश हो जाता है, केवल श्रीराधिकारानी के चरणकमलों की रज ही वह चाहता है, जिससे सहज ही श्रीजी की भक्ति (प्रेम) की प्राप्ति हो जाएगी, क्योंकि समस्त साधनों का साध्य सारस्वरूप एकमात्र 'प्रेमतत्व' ही है, जो सभी उपाधियों 'नाम, रूप, लीला, गुण, आदि सहायक तत्वों' का मूलाधार है, उस दिव्यातिदिव्य परमप्रेम की घनीभूत सार-समूह एकमात्र श्रीराधिका ही हैं, जो साक्षान्मन्मथमन्मथ रसिकशेखर श्यामसुंदर का भी प्राणजीवन धन हैं –

दिव्यप्रमोदरससार निजांगसंग, पीयूषवीचि निचयैरभिषेचयन्ती |
कंदर्प कोटि शरमूर्च्छित नंदसूनुर्सञ्जीवनी जयति कापि निकुंजदेवी ॥

(श्रीराधासुधानिधि – ५)

समस्त चिदचित् जगत में कोई भी जिनके सौंदर्य, माधुर्य, लावण्य, वैदग्ध्य, कारुण्य आदि की समता ही नहीं कर सकता फिर अतिशयता तो कैसे संभव है यथा श्रीव्यास जी महाराज लिखते हैं – **राधिका सम नागरी नवीन को प्रवीन सखी,रूप गुन सुहाग भाग आगरी न नारि । वरुन नागलोक भूमि देवलोक की कुमारि, प्यारीजू के रोम ऊपर डारौं सब वारि ॥**

श्रीजी का अवर्णनीय अलौकिक प्रेमरसमय गौरवर्ण -वपु है – **अंगप्रत्यंगरिंगन्मधुरतरमहाकीर्तिपीयूषसिंधोरिंदोः,**
कोटिर्विनिंदद्वदनमतिमदालोलनेत्रं दधत्याः।
राधायाः सौकुमार्याद्भुतललिततनोःकेलिकल्लोलिनीना,
मानंदस्यंदिनीनां प्रणयरसमयान् किं विगाहे प्रवाहान् ॥

(श्रीराधासुधानिधि - १६२)

श्रीवृषभानुनन्दिनी की कीर्ति से करोड़ों-करोड़ों मधुरातिमधुर प्रेमरसामृत-सिन्धु निकला करते हैं | श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि समुद्रमंथनकाल में सिन्धु-सार अमृत तो निकला था लेकिन अमृत का समुद्र कहीं भी आजतक नहीं निकला; वह केवल श्रीराधारानी के श्रीअंगों से ही निकला, उनके अंगों, प्रत्यंगों, उपांगों, अर्थात् रोम-रोम से करोड़ों-करोड़ों मधुरामृत-सिन्धु निकलते हैं, इसलिए अनंत प्रेमसिन्धुसंवाहिनी को ही 'राधा' कहते हैं | जब श्रीजी के सर्वांगों से सरस-सिन्धु निकलते हैं तो अनेकों चाँद भी निकलेंगे, (जब समुद्र से अमृत निकला तो उसमें से चाँद भी निकला था) अतः कोटि-कोटि चन्द्रमाओं को तिरस्कृत करने वाला जिनका मुखचन्द्र है और अत्यधिक प्रेममद से चंचल नेत्रों को जो धारण कर रही हैं, ऐसी सुकमारी श्री राधा हैं | ('कुत्सितः मारः यस्माद्' जिस सुन्दरता के आगे कामदेव भी तुच्छ लगता है, उसे 'कुमार' कहते हैं |) ऐसी असीम अद्वितीय सौन्दर्य-माधुर्यशालिनी श्रीजी अपनी गौरकान्ति से चिन्मय धाम श्रीबरसाने में नित्य लीलाविहार करती हैं | महाकवि बिहारीजी ने लिखा है – **मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय |**

जा तन की छाँई परै, स्याम हरित दुति होय ||

गौरांगी राधा की गौर-कान्ति से श्यामसुन्दर हरे अर्थात् रसमय हो जाते हैं अथवा श्याम-द्युति हृत (हरित, छीन या हरण) कर ली जाती है | रसिकाचार्य स्वामी हरिदासजी ने कहा है –

"बड़े भये हौ बिहारी याही छाँहि ते |"

श्रीजी की करुणा-कृपा से श्यामसुन्दर में रसिकता के दिव्य गुण आये हैं | श्रीराधारानी में ही ऐसे अद्वितीय अनन्त प्रेमरसमय गुण हैं कि आत्माराम श्रीकृष्ण को अपने आधीन कर रसमयी लीलाओं के लिए विवश कर देते हैं, अतः प्रेमरस की अधिष्ठात्री देवी श्रीराधिका ही हैं, जिनकी आराधना से ही नंदनन्दन ने ब्रजभूमि में रासरसमयी लीलाएँ सुसंपन्न कीं, इसलिए परमरसिक श्रीहरिरामव्यासजी ने लिखा है कि सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में रस बरसाने से आया और बरसाने में रस श्रीराधिका गोरी के सुभग श्रीचरणों से आया है –

सुभग गौरी के गोरे पांय ||
धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माय |
जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत, पति सों रति पछताय |
जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत रसनि अघाय |
ताके शरण रहत काको डर, कहत 'व्यास' समुझाय ||

(व्यास-वाणी)

भक्त-प्रेमकारिणी 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा'

श्रीब्रजयात्रा में बाबाश्री द्वारा कथित सत्संग (१६,१७/१०/२०१३) से संग्रहीत
संकलनकर्ता – संतश्री ध्रुवदासजी, मानमंदिर

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान द्वारा प्रातःस्मरणीय परम पूज्य श्रीश्रीरमेशबाबा महाराज के निर्देशन में प्रति वर्ष संचालित श्रीराधारानी ब्रजयात्रा एक अद्भुत चमत्कार है | इस यात्रा की सम्पूर्ण सेवा व्यवस्था हेतु प्रत्येक वर्ष करोड़ों रुपयों की धनराशि का व्यय किया जाता है किन्तु आज तक मानगढ़ का कोई भी सदस्य यात्रा के नाम पर किसी के द्वार पर चंदा या दान माँगने नहीं गया | सन् १९८८ से प्रारंभ हुई इस चालीस दिवसीय वार्षिक निःशुल्क ब्रजयात्रा में सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा विदेशों तक से सम्मिलित होने वाले लगभग पंद्रह हजार से अधिक ब्रजयात्री साक्षी हैं कि आज तक किसी भी यात्री से एक पैसा तक नहीं माँगा गया | इस ब्रजयात्रा के प्रारम्भ से अंतिम दिन तक श्रद्धालु भक्तगण जब पैसा चढ़ाने आते हैं तो श्रद्धेय श्रीबाबामहाराज बारम्बार विनम्रतापूर्वक उनसे अनुरोध करते हैं कि धन का दान मत करो, यदि देना ही है तो हमें भगवन्नाम दो | एकमात्र भगवन्नाम की दक्षिणा से ही इस यात्रा का संपोषण व संवृद्धि होती आ रही है क्योंकि इसमें चालीस दिनों तक अहर्निश श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन की रसमयी सरिता प्रवाहित होती रहती है; यह विलक्षण चमत्कार केवल ब्रजेश्वरी श्रीराधिकारानी का ही कृपा-प्रसाद है | पंद्रह हजार ही नहीं, पचास हजार व्यक्ति भी यदि इस यात्रा में पधारें तब भी उनका हार्दिक सुस्वागत है, किसी भी प्रकार की कोई चिंता नहीं | किसी भी ब्रजयात्री को आज तक न तो यात्रा से लौटाया गया और न ही भविष्य में कभी ऐसा होने की संभावना है | श्रीराधारानी के अलबेले दरबार में उनकी कृपा से कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं है | एक बार यात्रा में अवरोध उत्पन्न कर इसके निर्मूलन के आशय से कुछ ईर्ष्यालु-समाज विरोधी तत्वों ने भोजन बनाने वाले कुछ रसोइयों को कुसंग देकर दिग्भ्रमित कर दिया ताकि उनके हटने पर हजारों यात्रियों को भोजन की असुविधा उत्पन्न हो और वे यात्रा का परित्याग करके चले जाएँ | हमारे समाज की यह अतिशय हानिकारक दुष्प्रवृत्ति है कि हम लोग पारस्परिक राग-द्वेष में फँसकर सदा एक-दूसरे को नीचा दिखाने और अहित करने की कुचेष्टाओं में ही इस देवदुर्लभ मानव-योनि के आराधनीय अमूल्य क्षणों को नष्ट करते रहते हैं किन्तु ब्रजवासी श्रीजी की असीम महिमा पर आधारित एक रसिया गाते हैं – **"दुष्टों के दल में मचे खलबली, वृषभानु की लली | तेरो संकट हरेगी करेगी भली, वृषभानु की लली ||"** दुष्टों के दल में खलबली मचाने वाली एवं संकटहरनी श्रीवृषभानुनन्दिनी सदा-सर्वदा मानमंदिर के विशुद्ध भक्तिमय सेवा-कार्यों में सहायक बनी रहती हैं और खलमण्डली के कुटिल-कुत्सित दुष्प्रयासों को निरंतर असफल किया करती हैं | उन्हीं अनंत करुणा-वात्सल्यमयी ब्रजमहारानी की कृपा से ब्रजवासियों के घरों में ब्रजयात्रियों की सेवा हेतु रोटी बनने के दिव्य कार्य का शुभारम्भ हुआ और इस प्रकार पूर्व से भी अधिक उत्तम गुणवत्ता वाली भोजन-व्यवस्था का सुप्रबंध होने लग गया | इसी प्रकार ब्रजयात्रा के लिए अपनी स्वयं की ही भावना से आर्थिक सहयोग करने वाले लोग भी किन्ही कारणवश पृथक होकर चले गये परन्तु इस यात्रा ने विराम नहीं लिया और श्रीजी की कृपा से भविष्य में भी कभी विराम नहीं लेगी; जैसा कि इसका नाम है "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा", श्रीराधिकारानी ही इसका संचालन करके संपोषण-संरक्षण करती हैं | ब्रजभूमि उनका नित्य लीला-धाम है, वह यहाँ निवास करने वाले भक्तों की अभिलाषा को अवश्य पूर्ण करती हैं |

ब्रजयात्रा करने के इच्छुक ब्रजभक्त-यात्रियों को अपनी यात्रा सफल बनाने हेतु कुछ प्रारम्भिक दिशा-निर्देशों से

परिचित होना परमावश्यक है | पुराणों में इनका विस्तार से उल्लेख किया गया है –

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यः न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥

(विष्णुपुराण)

ब्रजयात्रा सुसम्पन्न करने हेतु शास्त्रों में बहुत से विधि-निषेधों का वर्णन किया गया है, उन सबका पालन करना अत्यंत कठिन होता है, लेकिन श्रद्धापूर्वक सत्संग (कथा-कीर्तन) सुनते हुए सुदृढ़ भक्तिभावमयी धारणा-शक्ति से भक्ति-विरोधक काम-क्रोधादि विकारों को रोकने से ब्रजप्राणवल्लभ श्रीराधामाधव की युगलप्रेमरसमयी ब्रजभक्ति की संप्राप्ति होती है | यथा – पूर्णरूपेण संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करना, ब्रह्मचर्य में केवल मैथुन-क्रिया का ही निषेध नहीं है | मैथुन आठ प्रकार का होता है –

स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् |
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ||

(दक्ष-संहिता)

ये आठ प्रकार के मैथुन जो नहीं करता है, वह ब्रह्मचारी है | 'स्मरणम्' - भोगों की स्मृति ही न आवे | 'कीर्तनम्' - भोगों की चर्चा ही न की जाए | 'केलि'- स्त्री-पुरुष आपस में किसी प्रकार की क्रीड़ा न करें | 'प्रेक्षणम्' – स्त्री-पुरुष को परस्पर एक-दूसरे को देखना भी नहीं चाहिए | 'गुह्यभाषणम्' - एकांत में स्त्री-पुरुष को वार्तालाप नहीं करनी चाहिए | 'संकल्पः' -दोनों को संकल्प नहीं करना चाहिए कि अमुक स्त्री अथवा अमुक पुरुष बहुत सुन्दर है| ऐसा मन में नहीं सोचना चाहिए | 'अध्यवसाय'- एक-दूसरे से मिलने और बात करने का निश्चय करना ही अध्यवसाय है | 'क्रियानिष्पत्ति' - सबसे अंत में है – मैथुन-क्रिया (परस्पर शारीरिक मिलन द्वारा विषयभोग-भोगना), इन आठ प्रकार के मैथुनों से जो स्वयं को बचाकर रखता है, वही ब्रह्मचारी है | इसीलिए राधारानी ब्रजयात्रा में यात्रीजन एक साथ तम्बुओं में रहते हैं, इसका कारण यह है कि अधिकतर एकांत में रहने पर ही मनोविकृतियाँ उत्पन्न होती हैं परन्तु भक्तजनों के साथ-साथ रहने से कामादि विकारों की सहज समाप्ति हो जाती है | भक्ति का प्रारम्भ भक्त-संग से ही होता है और 'भक्ति' के अनुदिन संवर्द्धन-संपोषण के लिए भी नित्य-निरन्तर भक्त-संग (सतत् सत्संग) की ही परमावश्यकता है | ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीराधारानी ने यशोदा मैया को भक्ति का महत्व समझाते हुए कहा है –

कृत्वा निकृन्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह |
वैष्णवेन सहाऽऽलापं कुरुष्व सततं सति ||
अङ्कुरो भक्ति वृक्षस्य भक्त सङ्गेन वर्धते |
परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च ||

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड - १११/१०,१३)

"हे महासती ! स्त्री का बहुत अधिक प्रेम अपने पति से होता है; ऐसे सौ पतियों को भी छोड़कर वैष्णव भक्त से बात करनी चाहिए, भक्तों के प्रति ऐसा प्रगाढ़ भाव रखना भगवान् की ही प्राप्ति है | भक्त-संग व श्रीहरिकथा-कीर्तनामृत के सिञ्चन से ही भक्ति रूपी वृक्ष के अंकुर का संवर्द्धन होता है |" केवल 'भक्त-प्रेम' के कारण से ही श्रीबाबामहाराज अपनी शारीरिक अस्वस्थ्यता और चिकित्सकों के मना करने के बावजूद भी ब्रजप्रेमीयात्रियों के दर्शनार्थ व उनकी सेवा 'ब्रजलीलास्थलियों की महिमा बताने' हेतु मानमंदिर से यात्रा-पाण्डाल में यात्रीजनों के मध्य अवश्य आते हैं | पूज्य महाराजश्री ब्रज-परिक्रमा की इच्छा रखने वाले भक्तों से प्रतिवर्ष यही निवेदन करते हैं कि आप लोग ब्रजयात्रा के लिए सदा ही यहाँ निःसंकोच आयें, यात्रा का शुल्क देने के लिए एक पैसा भी नहीं दीजिये क्योंकि हमारे श्रीमानबिहारीलाल सर्वसम्पन्न हैं, ये तो सर्वदा देते ही रहते हैं, ये किसी से क्या लेंगे ? हम लोग प्रभु को क्या दे सकते हैं ? कुछ नहीं दे सकते, केवल स्वयं को उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दें, बस, यही हमारा एकमात्र परम कर्त्तव्य है |

जब भक्त विमुख हो जाता है, कभी-कभी सम्पत्ति, भोगों में फँस जाता है, तब भी भगवान् एक क्षण के लिए भी अपनी कृपा नहीं हटाते हैं ।

श्रीयुगलरस-कथा

(द्रौपदी की दयाशीलता)

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित श्रीभागवतजी (२२/२/१९८५)

(संकलनकर्त्री, लेखिका- भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी, मान मन्दिर, बरसाना)

श्रीमद्भागवत में स्त्रीन् की प्रशंसा की गयी है | (लोग समझें नांय, निंदा की जगह निंदा करी जाय, गुण की जगह गुण कह्यो जाय), ऐसो नांय कि ऋषियन् को काहू के प्रति कोई पक्षपात हो, काहू सों द्वेष हो | ऐसौ नासमझ लोग ही कहैं हैं | मंदमति लोग तुलसीदासजी के बारे में आक्षेप करैं कि उन्होंने लिखौ है –

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी | सकल ताड़ना के अधिकारी ||"

याकौ मतलब यही भयौ कि वे स्त्रीन् सों चिढ़ते थे | नहीं..., गुसाईंजी कौ स्त्रीन् सों कोई वैर नहीं था, वे तो परमसंत थे; उन्होंने उत्तरकाण्ड में भक्ति को स्त्री बतायो कि स्त्री सबसे अधिक पूज्य है, आगे उन्होंने कह्यो कि नारी के अलग-अलग रूप होंय – **"मोह न नारि नारि के रूपा" |** एक मायारूपिणी होती है और एक भक्तिरूपिणी होवै जो परमपूज्या है | वैसे ही प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय में वेदव्यासजी बता रहे हैं कि जा समय अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोये हुए पाँच पुत्रन् की हत्या कर दई, तब अर्जुन अश्वत्थामा को पशु की तरह बाँधकर द्रौपदी के पास लै गये | द्रौपदी जिनके पाँच-पाँच बेटा मरे हैं, दुःखी बैठी है, फिर भी कितनों विशाल हृदय है उनकौ | जब द्रौपदी (कृष्णा) ने अश्वत्थामा को पशु की तरह पाश में बँधे हुए देखौ –

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन |
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च || (श्रीमद्भागवत १/७/४२)

"अश्वत्थामा की गर्दन झुक रही है शर्म के मारे | द्रौपदी ने जघन्यापराधी वा गुरू-पुत्र को, जाने पाँच-पाँच बेटा मारे, वाके प्रति भी अत्यन्त उदारता दिखाई | याही ते या श्लोक में शब्द प्रयुक्त भयौ है – 'वाम स्वभावा' | 'वाम' माने सुन्दर भी होय है और 'वामा' माने स्त्री भी होय; दोनों अर्थ हैं यहाँ पर, अगर सुन्दर स्वभाव वाली मानों जाय तब भी द्रौपदी स्त्री ही तो थी, वाकी अत्यधिक प्रशंसा करी गई, व्यासजी ने अर्जुन से भी बढ़कर प्रशंसा कियौ है तो यामें भी नारी की प्रशंसा भई | "वामायाः स्वभावा यस्याः" – वामात्व अर्थात् स्त्रीत्व की ही प्रशंसा भई अथवा **"वामः स्वभावः यस्याः"** – 'यस्याः' में भी स्त्रीलिंग आवे तो भी स्त्री की प्रशंसा भई | दोनों अर्थ में 'वाम' माने सुन्दर अर्थात् 'वामा' माने स्त्री | सुन्दर स्वभाव कौन को, वा नारी को | दोनों ही स्वभाव कौन को भयो, नारी को भयो अथवा स्त्री तो स्वभाव से दयालु होय, दोनों ही अर्थ में स्त्री की प्रशंसा है यहाँ | द्रौपदी भूल गयी कि अश्वत्थामा ने हमारे पाँच-पाँच बेटा मारे हैं और कृपा करके वाकै पास जाकरके प्रणाम करौ | धन्य है वा नारी महामहिमाशालिनी द्रौपदी को क्योंकि प्रणाम कर रही है ऐसे ब्राह्मण अधम बन्धु को जाकी भगवान निन्दा कर रहे हैं | अश्वत्थामा कौ पशुवत्-बंधन नहीं देख सकी और बोली - 'हे अर्जुन ! मुच्यतां-मुच्यताम् - छोड़ो-छोड़ो, यह तो ब्राह्मण है, हर हालत में हमारे तो गुरूस्वरूप ही हैं और फिर तुमने तो श्रीगुरूदेव से अध्ययन कियौ है | अब अर्जुन को उपदेश दे रही है द्रौपदी, धन्य है !! दयाशीलता में वह पाण्डवों से भी आगे निकल गई | कृष्णा ने कहा कि देखो, तुमने जिन गुरुदेव से विद्या पायी, ये वही भगवान द्रोण हैं जो अपने बेटे के रूप में खड़े हैं –

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते |
तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ||
(श्रीमद्भागवत १/७/४५)

वेद में भी कहा गया है – "आत्मा वै जायते पुत्रः" पिता ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होय है, कौन कौ अपमान कर रहे

हे प्रभु ! सबसे बड़ी जो आपकी कृपा है, वह ये है कि आपका नाम वासनाओं के सहित कर्मों का हरण कर लेता है ।

हो, साक्षात् भगवान् द्रोण खड़े हैं | तुम यह मत समझो कि हमारे पुत्रन् को हत्यारो है, होश में आ जाओ |

एक द्रौपदी ने एकदम सबके कान खड़े कर दिए, इसलिए कहा है 'वामस्वभावा' | द्रौपदी ने आगे कह्यो - देखो, गुरुदेव की जो अर्धांगिनी हैं कृपीजी, कहीं वे हमारी तरह दुःखी न हो जायें | जैसे - हम दुखी हैं पुत्रों के मारे जाने से, वैसे ही कहीं वे न रो दें | अरे ! याके मारे से कोई हमारे बेटे लौटेंगे? याके मारे से वे लौटेंगे तो नहीं, याको तुम मारोगे तो याकी जो माता है, तुम्हारी गुरु माता है, वो रोवेगी तो तुम और ज्यादा अपराध करोगे, या लिए याय छोड़ो और जिन लोगन ने ब्रह्म कुल को कोप करायो है, वे राजा ही क्यों न हों, नष्ट हो जायेंगे | सूतजी कहैं हैं – 'हे ब्राह्मणो ! (वा समय युधिष्ठिर ने खड़े होकर कही) द्रौपदी ठीक कह रही है |' वा समय और काउ की हिम्मत नांय भयी कछु बोलबे की क्योंकि भीमसेन रिसियाय रहे | और कौन बोलेगो, भीमसेन दहाड़ के वाको सिर तोड़ देंगे और कहेंगे कि बड़ो बनो है धरम को आचार्य, हम याय छोड़ दें, हमारे छोरान को मार गयौ | भीमसेन के आगे कौन बोलेगो ? भीमसेन ते नहीं झिली, भले ही युधिष्ठिर खड़े भये पर सब जान रहे हैं कि भीम अश्वत्थामा को सिर जरूर तोड़ेंगे | अगर अर्जुन वाको छोड़ऊ दें तो भीमसेन बैठे हैं,अश्वत्थामा को देखते ही उनकी भयंकर आँखें चढ़ रहीं हैं, भुजा फड़क रही है | वा समय युधिष्ठिर खड़े भये, भागवत में उनके लिए शब्द लिखो है 'धर्मसुत' अर्थात् धर्मराज के पुत्र; उन्होंने कही कि द्रौपदी ठीक कह रही हैं, जब उन्होंने ठीक कहो तो नकुलजी भी पक्ष में ह्वै गए, सहदेवजी, युयुधान, सात्यकि और अर्जुन भी उनको समर्थन करवे लग गये और भगवान् भी बोले कि ठीक है, युधिष्ठिरजी ठीक कह रहे हैं | सब युधिष्ठिरजी की ओर हो गए, जितनो बहुमत थो, उधर चलो गयो; तब गुस्सा आयो भीमसेन को और खड़े होकर बोले कि इन सब लोगन को गड़बड़ काम हैं; मैं अकेलो विपक्ष को नेता हूँ, याको (अश्वत्थामा को) खत्म कर दऊँगो, कौन कहता है इसको छोड़ो | सबको खण्डन कर दियो भीम ने | न तो युधिष्ठिर को सम्मान रखो, न कृष्ण को और न ही द्रौपदी को क्योंकि भीमसेन हैं वो | भीम बोले – "अश्वत्थामा ने काउ को तो भलो नहीं कियो, याको स्वामी दुर्योधन भी तो दुःखी भयौ पाँचों बालकन के कटे सिर देखकर |" अब भगवान् सोचने लगे कि ये झगड़ौ तो गहरौ फँस गयो, कहीं ऐसो न हो कि भीमसेन ज्यादा रिसियावें | दोनों (भीम और युधिष्ठिर) की बात सुनकर सखा अर्जुन के मोहड़े देख रहे हैं | अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं कि कहा करें, क्या बड़े भइया भीमसेन से लड़ें ? श्यामसुन्दर बोले – 'अच्छा, सब लोग बैठो, भीमसेनजी आप भी विराजो, बड़े भइया, आप भी बैठो, देखो, अधम ब्राह्मण को भी नहीं मारनो चाहिए, ठीक बात है, एक तो कायदा ये है | दूसरो कायदा ये है कि जो आततायी है, वाको वध कर देनो चाहिए और शास्त्र रूप से ये दोनों बातें मेरे द्वारा कही गई हैं, द्रौपदीजी ! मैंने तुमपे रख दियो फैसला, अब न अर्जुन बोलें, न युधिष्ठिर बोलें, न मैं बोलूँ और न भीमसेन तुम बोलो किन्तु द्रौपदी, तुम सबको प्रिय करो, मेरो भी प्रिय करो और भीमसेन को भी परम प्रिय करो |' अब परीक्षा हो रही है द्रौपदी की, अब तक तो हृदय की परीक्षा भई, अब बुद्धि की परीक्षा हो रही है कि कैसी बुद्धि वाली है? अर्जुन ने भगवान् के भाव को समझकर अश्वत्थामा के सिर की मणि निकाल लियो, वह वध के ही समान है, कैसे? जो अधम ब्राह्मण होय, वाको स्थान से निकाल दो, वाको मूड़ मुड़ाय दो, वाके धन को ले लो, यही वध है | बड़े पुरुषन् को वध नहीं कियो जाय, उनको सिर नहीं काटो जाय | या प्रकार से अर्जुन ने अश्वत्थामा के मस्तक से मणि लेकर वाको छोड़ दियो, वह निस्तेज हो गयो तब फिर पाण्डवन् ने अपने पूर्वजों की अंतिम क्रिया करी | याके लिए गांधारी व धृतराष्ट्र के सहित पांडवजन गंगा तट पर जलदान के लिए गये |

क्रमशः

जब तक संसार के रस की अनुभूति है, तब तक श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं है । अगर श्रीकृष्ण मुझे मीठे लगते तो साहित्य के नौ रस, भोजन के छह रस, संसार के अन्य सब रस फीके हो जाते ।

श्रीकृष्ण-रसामृत

(कथा-श्रवण में साक्षात् भगवत्सन्निधि)

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी,मान मन्दिर द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवतकथा'(९/१/२०१४)

सनकादिक मुनीश्वरों की बात सुनकर नारदजी ने सुदृढ़ संकल्प कर लिया कि मुझे कथा का अनुष्ठान करना ही है किन्तु समस्या यह थी कि इसका अनुष्ठान कहाँ हो ? सनकादिक मुनियों ने कहा कि हरिद्वार में 'आनन्द' नामक तट पर इस परम पावन यज्ञ का अनुष्ठान किया जाएगा | अनुष्ठान आरम्भ होने जा रहा है, नारदजी महाराज जैसे श्रोता, सनकादिक मुनीश्वरों जैसे वक्ता और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की परिपुष्टि जैसा परम पावन लक्ष्य, फिर उस कथा में कैसा रस प्रवाहित हुआ होगा, ये तो कल्पनातीत बात है | जैसे ही नारदजी महाराज और सनकादिक मुनीश्वर विशालापुरी से नीचे हरिद्वार में आये हैं, मार्ग में जितने भी ऋषिगण मिलते हैं तो पूछते हैं – "अरे भगवन् ! दो-दो महापुरुष आज एक साथ जा रहे हैं, ऐसा क्या होने वाला है ? हे देवर्षे ! आप कहाँ पधार रहे हैं, क्या होने जा रहा है?" नारदजी ने कहा कि 'भागवत ज्ञानयज्ञ' का अनुष्ठान होने जा रहा है, आप सब लोग उसमें पधारें | अगर नारदजी जैसे प्रचारक हों तो क्या कथा के प्रचार में कमी रह जाएगी? थोड़ी-सी देर में चारों ओर हल्ला मच गया कि ज्ञानयज्ञ का अनुष्ठान होने जा रहा है | सनकादिक भी ब्रह्मपुत्र हैं और नारदजी भी ब्रह्मपुत्र हैं; भैया ही कहेंगे और भैया ही सुनेंगे, वक्ता भी २४ अवतारों में से एक हैं और श्रोता भी २४ अवतारों में से एक हैं, दोनों ही प्रभु के प्रिय हैं | सनकादिक मुनीश्वर विराजे कथा कहने के लिए, श्रोताओं में श्रेष्ठ देवर्षि नारदजी कथा-श्रवण हेतु सबसे आगे बैठे | जैसे ही चारों ओर समाचार फैला कि श्रीमद्भागवतामृत बहने जा रहा है तो उसका पान करने के लिए कथारस-लम्पट लोग अपने स्थानों से भागे कि कथा हो रही है, कहीं कथा-श्रवण से चूक न जाएँ, उन रस-लम्पटों में भी परम वैष्णवजन (प्रभु के प्राणप्रिय भक्त) दौड़-दौड़ कर कथा सुनने के लिए पहुँचे | हम लोग विषयभोगों के लम्पट हैं, काम-लम्पट हैं, स्त्री-लम्पट हैं लेकिन रस-लम्पट कौन है ? जिसको एकबार कथा-रस का आस्वादन करने का अवसर मिल गया है | जिसने भलीभाँति एकबार भी अच्छी तरह से मन लगाकर कथामृत का रसास्वादन कर लिया तो वह रस-लम्पट बन जायेगा, फिर वह इस रस के बिना रह नहीं पायेगा |

भ्रमरगीत में भी ब्रजगोपियों ने यही कहा है –

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट् सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/१८)

श्रीकृष्णलीला-चर्चा ऐसा परमामृत है कि एकबार जिसको इसका चस्का लग गया, उसके राग-द्वेष आदि द्वंद्व समूलतः सहज नष्ट हो जाते हैं और वह घर-परिवार को छोड़कर भिक्षा-वृत्ति से जीवन-यापन कर नित्य निरन्तर श्रीकृष्णलीलामृत का कर्णपुटों से रसपान करता है | इसलिए ऐसे रसिक श्रोताजन सुन लें कि अमुक स्थान पर कथा का आयोजन है और वह वहाँ जाने से वंचित रह जाएँ, ऐसा तो सम्भव ही नहीं है | इसलिए दौड़-दौड़ कर विरक्त, ब्रह्मचारी, सन्यासी आदि सब कथा सुनने के लिए आये हैं | गृहस्थ भक्तजन अपनी स्त्री, पुत्रों को लेकर कथास्थल पर पहुँचे हैं | जो भी रसिक श्रोताजन थे, वे सभी दौड़-दौड़ कर कथा श्रवण करने के लिए पहुँचे हैं | बहुत से लोग अभिमान के कारण नहीं आये कि अरे ! हम क्यों जाएँ कथा सुनने के लिए, नीचे बैठना पड़ेगा; तो भृगुजी महाराज दौड़कर के गये और बोले कि ये विचार ही अपराध है, ऐसा मत सोचें, जल्दी से पधारो | हाथ जोड़-जोड़कर भृगुजी महाराज उन अभिमानीजनों को भागवतकथा की महिमा सुनाते हुए मना रहे हैं कि उस भक्तिमय ज्ञानयज्ञ का तो एक क्षण भी सुदुर्लभ है; इस प्रकार से जो नहीं आ रहे थे, उनको भृगुजी मनाकर ले आये | इसके उपरान्त सनकादिक मुनीश्वरों ने कथा का

माहात्म्य कहना आरम्भ किया, उस महिमा को सुनते ही भक्तिमहारानी अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान-वैराग्य) को लेकर नाम-संकीर्तन करते हुए नृत्य करने लग गयीं –

श्रीकृष्ण ! गोविन्द !! हरे मुरारे !!!हे नाथ ! नारायण !! वासुदेव !!!

जैसे ही ज्ञान-वैराग्य सहित भक्ति महारानी वहाँ प्रकट हुईं | कथा का आरम्भ भी नहीं हुआ, केवल माहात्म्य चल रहा था, ऋषि-मुनि तो विस्मित हो गये कि अरे ! ये कैसे यहाँ आ गयीं, अभी तो ज्ञान-वैराग्य के बारे में सुन रहे थे कि वे बैठ भी नहीं पा रहे हैं और अब ये खड़े होकर नाच रहे हैं ...!!!

भक्ति महारानी ने स्वयं कहा कि आपलोग विस्मयान्वित न हों; सनकादिक मुनीश्वरों ने जो कथा कही, उस कथा से सिंचित होकर मैं यहाँ पुनः नवतरुणी होकर चली आई हूँ, मेरे पुत्र ज्ञान-वैराग्य भी नवयौवन को प्राप्त हो गये हैं | यह सुनकर ऋषियों को महान आश्चर्य हुआ कि जिस निमित्त से कथा कही जा रही थी, वह लक्ष्यपूर्ति तो कथा के पूर्व ही हो गई | कथा-माहात्म्य के वर्णनमात्र से भक्ति-ज्ञान-वैराग्य एकदम परिपुष्ट होकर नवनवायमान हो गए | भक्ति महारानी ने पूछा – "हे मुनिजनो ! यहाँ इतना श्रोता-समुदाय बैठा है, सबके लिए अपना-अपना एक निश्चित स्थान है, मैं कहाँ बैठूँ ?"

सनकादिक मुनीश्वरों ने भक्ति महारानी से कहा –

भक्तेषु गोविन्दसुरूपकर्त्री प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री |
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ||

(पद्मपुराण, भागवतमाहात्म्य ३/७१)

भवरोग-निवारिणी व प्रेम-प्रदायिनी प्रभु की स्वरूपा-शक्ति श्रीभक्तिमहारानी आप नित्य-निरन्तर वैष्णव-भक्तों के मनमन्दिर में विराजित रहें, आपके लिए इससे अच्छा स्थान और क्या होगा ? अब जितने भक्त कथा-श्रवण के लिए आये थे, उन सबके निर्मल चित्त में भक्ति महारानी प्रवेश कर गयीं | अब जहाँ भक्ति महारानी पहुँच जायें, वहाँ प्रभु को जाय बिना कहाँ चैन? जितना श्रोता समुदाय था सबके हृदय में भक्ति महारानी जाकर बैठ गईं |

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् |
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ||

(पद्मपुराण, भागवतमाहात्म्य - ४/१)

भक्तवत्सल प्रभु ने देखा कि अरे ! भक्ति महारानी मेरे भक्तों के हृदय में आसीन हो गईं तो मेरा यहाँ नित्य धाम में क्या काम ? तब ठाकुरजी भी अपना निज लोक छोड़कर उन वैष्णव भक्तों के हृदय में विराजमान हो गये | भागवतकथा में ही यह सामर्थ्य है कि जो हृदय-कमल में भक्ति की स्थापना कर भगवान् को विराजमान कर देगी | श्रीभगवान् जब विराजमान हो गये मन-मन्दिर में, तो फिर उनके प्रेमी भक्तों अर्जुन, नारद, प्रह्लाद, उद्धव आदि को कहाँ चैन ? ये सब के सब वहाँ गूढ़ रूप से आकर बैठ गये |

वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः |
तत्कथा श्रवणार्थं ते गूढ़रूपेण संस्थिताः ||

(भागवतमाहात्म्य ४/५)

ये कथा श्रवण की एक मर्यादा है | कथा में जब आये तब इस ढ़ंग से आये कि अन्य श्रोता को कोई समस्या न हो | शिवजी भी कथा सुनने गूढ़ रूप से जाते हैं | मानसजी में लिखा है कि भगवान् शंकर काकभुशुण्डिजी के यहाँ सत्संग में पक्षी बनकर जाते हैं क्योंकि महादेवजी जानते हैं कि अगर मैं साक्षात् रूप से चला जाऊँगा तब सभी पक्षीगण मुझे ही देखेंगे, जिससे कथा में व्यवधान पैदा होगा | इसलिए कथा-कीर्तन में भगवान् तो आते ही हैं, उनके साथ नित्य सिद्ध परिकर आते हैं |

जहाँ कहीं भी भागवत कथा का श्रवण किया जाता है, वहाँ भगवान् निश्चित रूप से विराजमान रहते हैं –

कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् |"

(स्कन्दपुराण, भागवतमाहात्म्य - ३/१२)

भगवद्कथा-श्रवण करने इस भाव से आयें कि हम साक्षात् श्रीप्रभु की सन्निधि प्राप्त करने जा रहे हैं, वहाँ साक्षात् श्रीभगवान ही बैठे हुए हैं, उनकी सामीप्यता व संग प्राप्त करने जा रहे हैं | श्रीठाकुरजी के पधारने के उपरान्त नारदजी ने मुनीश्वरों से पूछा कि इस कथा से कौन-कौन पवित्र होते हैं ? सनकादिक मुनीश्वरों ने अनेक पाप गिनाए और कहा कि जघन्य से जघन्य पाप करने वाला भी कथा-श्रवण से सर्वपापों से सर्वथा मुक्त हो जाता है | नारदजी महाराज ने कहा – "हे मुनीश्वरो ! आप कह तो रहे हैं, पर इसका कोई प्रमाण है ? ऐसा कभी हुआ है?" सनकादिक मुनीश्वरों ने वहाँ नारदजी को गोकर्ण- उपाख्यान का श्रवण कराया |

क्रमशः

एक बार मेरे दिल में चले आइये हुजूर ।
ये बन्दा गरीब है, कर्म फरमाइये हुजूर ।

श्रीमद्भगवद्गीता

(आत्मज्ञान से अविद्या-नाश)

श्रीबाबा महाराज के सत्संग (१८/१/२०१२) से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री, लेखिका – बाल साध्वी दयाजी, मानमंदिर, बरसाना)

श्लोक -१७

क्रमान्तर्गत शेष व्याख्या –

'येन सर्वमिदं ततम्' – 'येन' - जिस परमात्मा के द्वारा, सर्वम् 'इदम्' - सारा संसार, ततम् – फैलाया गया है, 'अविनाशि तु तद्विद्धि' - उसको अविनाशी समझ लो क्योंकि जो अव्यय, अविनाशी है, उसका विनाश संसार में कोई नहीं कर सकता है, वह सत् वस्तु है | 'सत्' का अर्थ है – 'अव्यय |' अविनाशी को अव्यय या सत् कहते हैं और विनाशी को असत् कहते हैं | आत्मा अविनाशी है तथा शरीर विनाशी है | शरीर को कितना भी घी पिलाओ किन्तु यह एक दिन नष्ट हो जाएगा | अमेरिका में एक अत्यंत धनी व्यक्ति हुआ है, उसकी मृत्यु होने पर उसके शरीर को अत्यधिक सुरक्षित स्थान पर रखा गया है और उस शरीर को अनेक चिकित्सक लोग नष्ट होने से बचाते रहते हैं इस आशा से कि एक दिन वह जीवित हो उठेगा लेकिन यह गलत है, जो चीज विनाशी है उसको बचाया नहीं जा सकता |

श्लोक – १८

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

'अन्तवन्त इमे देहा' – ये 'शरीर' अन्त वाले हैं | 'नित्यस्योक्ताः शरीरिणः' - शरीरी आत्मा है | 'शरीरी' अर्थात् शरीर धारण करने वाला 'आत्मा' नित्य होता है, जैसे - तुम शरीर पर कपड़ा पहनते हो तो कपड़ा बदला जाता है, शरीर नहीं बदलता, उसी तरह से शरीरी आत्मा जो नित्य है, उसके जितने देह हैं, वे अन्त वाले हैं, सब बदलते रहते हैं | आत्मा अनाशी है, अप्रमेय है अर्थात् उसको बुद्धि से समझा नहीं जा सकता | भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि इसलिए युद्ध करो क्योंकि सबके शरीर नाशवान हैं | तुम नहीं लड़ोगे तब भी ये (शत्रु योद्धा) मृत्यु को प्राप्त होंगे, इसलिए शरीर के बारे में मत सोचो, आत्मा के बारे में सोचो |

श्लोक – १९

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

'य' - जो आदमी, 'एनम्' – इसको (आत्मा को), 'हन्तारम्' - मारने वाला समझता है | 'यश्चैनं मन्यते हतम्' – जो इसको (आत्मा को) मरा हुआ समझता है | 'उभौ तौ न विजानीतो' - दोनों ही नहीं जान पाए, आत्मा को मारने वाला या मरने वाला दोनों ही समझना गलत है | इसे मरने वाला समझना भी गलत है क्योंकि आत्मा की मृत्यु नहीं होती है और न ही आत्मा मारने वाला है | इसलिए आत्मा के सम्बन्ध में दो चीजें हैं – 'न तो यह मरता है और न ही मारा जाता है |' नायं हन्ति न हन्यते - न आत्मा मरती है और न ही मारी जाती है | कोई गाली दे रहा है तो विद्वान् गुस्सा नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि न तो आत्मा गाली देती है, न आत्मा को गाली लगती है, आत्मा न मरती है न मारती है, आत्मा का न कोई मान है, न अपमान है | सच्चे संत शरीर से अलग रहते हैं और मूर्ख लोग जो शरीर पर दृष्टि रखते हैं, वे इसी के मान-सम्मान को सच मानकर व्यथित होते रहते हैं

श्लोक – २०

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

'न जायते' - न यह (आत्मा) पैदा होता है, 'म्रियते' - न मरता है, 'कदाचिन्' – कभी भी नहीं, 'नायं भूत्वा' - न यह कभी हुआ, 'भविता' – (न आगे) होगा, 'भूयः' - फिर

से, 'अयम्' – यह, अज – अजन्मा है, नित्यः – नित्य है, शाश्वतोऽयम् – यह (आत्मा) शाश्वत (अखण्ड) है, पुराणो - सबसे पुराना है, न हन्यते - न मारा जाता है, हन्यमाने शरीरे – शरीर के मारे जाने पर भी |

जो ब्रह्मज्ञानी होते हैं उनको शरीर के काटे जाने पर भी दुःख नहीं होता क्योंकि उन्हें यह विवेक रहता है कि आत्मा नहीं काटी-मारी जा रही है | इस सम्बन्ध में एक उदाहरण है कि एक सिद्ध ब्रह्मज्ञानी महात्मा हुए हैं स्वामी रामतीर्थजी, वह हिमालय में रहते थे | एक बार सिंह ने उन पर आक्रमण कर दिया | जब सिंह किसी को मारता है तो पहले उसकी छाती चीरता है और फिर छाती चीर करके रक्तपान करता है, जब रक्त से पेट नहीं भरता तो थोड़ा-बहुत माँस खा लेता है | स्वामी रामतीर्थजी सच्चे ब्रह्मज्ञानी महात्मा थे, शेर ने उनको पकड़ा और पटक के छाती चीर दी किन्तु वह स्वयं अपना माँस निकाल-निकाल कर फेंकने लग गए और शेर से कहने लगे – 'ले खा ले, तू अपना पेट भर ले |' यह एक सत्य घटना है | 'हन्यमाने शरीरे' - शरीर मारा जा रहा है लेकिन उनको ज्ञान है कि न हन्यते - आत्मा नहीं मर रही है, इसलिए उनको कोई दुःख (कष्ट) नहीं हुआ | दूसरा उदाहरण है कि भीष्मपितामह बाणों की शय्या पर पड़े थे, भगवान् की कृपा से उनके अंतःकरण में ज्ञान उत्पन्न हुआ तो कोई पीड़ा नहीं हुई | ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं | जिसको ज्ञान हो जाता है कि 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' - शरीर मारा जा रहा है लेकिन आत्मा नहीं मारी जा रही है, तो उसे सुख-दुःख की प्रतीति नहीं होती है | यह ज्ञान मारे जाते हुए शरीर में भी उनको रहता है कि आत्मा नहीं मारी जा रही है | ऐसे बहुत से महात्मा होते हैं जिनको शरीर के मारे जाते समय कोई कष्ट नहीं होता है क्योंकि उनको यह विवेक रहता है कि आत्मा का जन्म नहीं होता, मृत्यु नहीं होती, न यह पहले कभी उत्पन्न हुआ और न आगे होगा, यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत् अर्थात् सदा एक-सा रहता है तथा सबसे पुराना है; यह स्थिति ब्रह्मज्ञानियों की होती है, इसलिए शरीर के मारे जाने पर भी उन्हें कोई कष्ट नहीं होता | ऐसे ही भक्तमाल में कथा है - संत कृष्णदास पयहारीजी थे, एक बार कोई सिंह उनकी गुफा के सामने आकर बैठ गया, वह भूखा था तो कृष्णदासजी अपने शरीर का मांस काट-काट कर फेंकने लग गए और कहने लगे – 'ले, खा ले |' ऐसा इसलिए किया क्योंकि वह सबमें भगवान् का दर्शन किया करते थे, अतः उनकी ऐसी निष्ठा के कारण उस सिंह में से भगवान् प्रकट हो गये और उनको दर्शन दिया |

श्लोक – २१

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् |
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

वेद – जो जानता है, एनम् – इस आत्मा को, अविनाशिनम् - कि यह अविनाशी है , नित्यम् - नित्य है | अविनाशी अर्थात् इसका कभी विनाश नहीं होता और यह नित्य, सदा रहता है | अव्यय – कभी इसमें से कुछ खर्च नहीं होता, घटता नहीं है | इसलिए हे अर्जुन, कथं स पुरुषः - कैसे वह पुरुष, कं घातयति हन्ति कम् – किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है |

जिसको ऐसा ज्ञान है, वह न मारता है और न मरवाता है क्योंकि आत्मा मरती नहीं है |

क्रमशः

अंगं गलितं पलितं.....मुञ्चत्याशा पिण्डम् ।

(श्रीमत् शंकराचार्य विरचितं चर्पटपञ्जरिका)

आद्य शंकराचार्य जी ने कहा कि देखो इस बूढ़े को, सब अंग गल गये हैं, बाल सफेद हो गये हैं, दाँत मुँह में नहीं हैं फिर भी ये आशा लगाये है संसार से, विषयों से, आसक्तियों से और ऐसे ही ये मर जायेगा । बूढ़ा हो गया है, चल नहीं पाता है, लाठी लेकर चलता है । कहाँ गया वो बचपन, वो जवानी फिर भी जीव आशा को नहीं छोड़ता ।

स्वार्थशून्यता से समर्था-रति

संकलन एवं लेखन- संत श्रीबरसानाशरणजी, मान मन्दिर, बरसाना

भगवान् से किसी भी प्रकार की भोजन-वस्त्रादि की भी कोई कामना नहीं करनी चाहिए | यही उत्तम भक्त का लक्षण ११ वें स्कंध में नवयोगेश्वरों ने बताया है –

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

(श्रीमद्भागवत ११/२/५०)

कामना तो क्या, कामना का बीज वासना भी जिनके हृदय में नहीं है और न ही कामना संबंधी कर्म हैं, उनके हृदय में निश्चित श्रीकृष्ण रहते हैं, कामना हटी हृदय से और हृदय में कृष्ण आये; क्योंकि भगवान् निष्काम हृदय में रहते हैं | भगवान् राम ने स्वयं मानसजी में कहा है कि जिनको मन-वचन-कर्म से मेरी ही गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, मैं उनके हृदयकमल में नित्य निवास करता हूँ|

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ॥
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड -१६)

जिसके हृदय में किसी भी प्रकार की कोई कामना है, कृष्ण उसके हृदय में कभी नहीं आ सकते और न ही वह भगवान् को कभी जान सकता है | यह राजा सत्यव्रतजी ने कहा है –

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरोह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तम् अन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥

(श्रीमद्भागवत ८/२४/५२)

यद्यपि भगवान् सम्पूर्ण जगत के प्रिय हैं, सबसे प्यार करते हैं, ईश्वर हैं, सबकी आत्मा हैं, सबसे बड़े सुहृद हैं, ज्ञान हैं, अभीष्ट पदार्थ हैं, सिद्धि भी वे ही हैं, हमारी आत्मा हैं, सब कुछ हैं किन्तु जब सब कुछ हैं तो दिखाई क्यों नहीं पड़ते? तो सत्यव्रत जी कहते हैं इसलिए नहीं दिखाई पड़ते क्योंकि हम अन्धे हो गए हैं, हमारी बुद्धि अंधी हो गयी है। क्यों अन्धे हुए? छोटी-छोटी इच्छाओं ने हमको अंधा बना दिया, अगर ये इच्छाएँ हट जाएँ तो अभी भगवान् दिखाई पड़ने लगेंगे –

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १३१)

इसलिए भगवान् से किसी भी वस्तु की चाह नहीं करनी चाहिए, यहाँ तक कि भूखे हो तो रोटी की भी इच्छा नहीं करनी चाहिए, अगर इतना आकांक्षा रहित अन्तःकरण बन जाए तो भगवान् अभी हम लोगों के मन-मंदिर में आकर रहेंगे, हमारे हृदय से कभी नहीं जाएँगे। मीराबाई के पास यही सिद्धि थी, इसलिए ठाकुरजी उनके साथ रात-दिन खेलते थे, ये उन्होंने स्वयं कहा है एक पद में –

मैं गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥
रैण पड़ै तबही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रैन दिना वाके सँग खेलूँ, ज्यों त्यों ताहि रिझाऊँ ॥

मीरा जी कहती हैं कि मैं रोज गिरिधर के साथ जाती हूँ, नित्य दर्शन करती हूँ, वह मेरा परम प्रियतम है, रात-दिन उसके साथ मैं खेलती हूँ। ऐसी सिद्धि मीराजी को कहाँ से मिली तो आगे पद में वह स्वयं इस सिद्धि का रहस्य बताती हैं कि मैं गिरिधर से कभी कुछ चाहती नहीं हूँ, इसीलिये वे दिन-रात मेरे साथ खेलते हैं –

जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे दे सोई खाऊँ |
मेरी उनकी प्रीति पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ||
जहाँ बिठावै तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ |
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ ||

हम लोग सोचते हैं मीठा मिल जाए, बर्फी मिल जाए, लड्डू मिल जाए; आज ये कपड़ा पहना है, कल नया कपड़ा मिल जाए, रुपया-पैसा मिल जाए, मान-सम्मान मिल जाए, ये सब इच्छाएँ भक्ति को नष्ट करती हैं, इसलिए इच्छाओं को खत्म कर दो, अभी भगवान् दिखाई पड़ेंगे | अगर ये छोटी-छोटी कामनाएँ बनी रहेंगी तो ये हमें भगवान् से अलग कर देंगी |

जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
तुलसी कहु कैसे रहें, रवि रजनी इक ठाम ॥

सूर्य और रात्रि जैसे एक साथ नहीं रह सकते हैं, ऐसे ही जहां कामनाएँ हैं वहाँ भगवान् नहीं हैं | यदि भगवान् को पाना है तो कामनाओं को छोड़ना ही पड़ेगा। अपने हृदय को कामना रहित बनाना ही पड़ेगा | सभी भक्तों ने भगवान् से यही प्रार्थना की –

हे नाथ ! हमारे हृदय की समस्त कामनाओं को नष्ट कर दो, क्योंकि ये कामनाएं हमें आपसे दूर करती हैं इसलिये आप ऐसी कृपा करो कि कामना का बीज भी हमारे हृदय में कभी अंकुरित न हो | ऐसा प्रह्लाद जी ने नृसिंह भगवान् से कहा था, जब भगवान् ने उनसे कहा था –

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७/९/५२)

प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो भी अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो, मैं जीवों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला हूँ |

तब प्रह्लादजी ने बड़ी चतुराई से वर माँगते हुये कहा कि ठीक है, हे प्रभो ! यदि आप मुझको कुछ देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदय में कभी किसी कामना का बीज अंकुरित ही न हो |

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७/१०/७)

क्योंकि जब तक हमारे मन में कामनाएँ हैं संसार की, विषय-भोगों की, तब तक कुछ नहीं होगा; चाहे योग-यज्ञ-व्रत कुछ भी करते रहो; जैसे - भूसा कूटते रहो, उसमें दाना है ही नहीं, फिर कहाँ से निकलेगा? ऐसे ही जब तक संसारी कामनाएँ हैं, स्वप्न में भी भगवान् नहीं मिलेंगे । सूरदासजी ने कहा है –

जौ लौं मन कामना न छूटै ।
तौ कहा जोग-जज्ञ ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै ॥
कहा सनान किय तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै ।
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, उर्ध्व धूम के घूटैं ॥

कोई कुम्भ मेला नहाने जाता है, कोई तीर्थयात्रा में जाता है, इससे कुछ नहीं होगा । कोई भस्म लगाता है, जटा बढ़ाता है, अठारहों पुराणों को पढ़ता है लेकिन मन में संसारी कामनाएँ हैं तो भगवान् कभी नहीं मिलेंगे? आगे सूरदासजी कहते हैं –

सूरदास तबहीं तम नासैं, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ॥

जब समस्त कामनाएँ नष्ट हो जाएँगी, तब हृदय में ज्ञान का झरना फूटेगा और अनन्तकाल के लिए हम आनन्द में डूब जायेंगे । शाश्वत शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी | गीताजी में भी भगवान् ने कहा है –

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/७१)

जब सभी कामनाएँ चली जाएँगी, निःस्पृह, निरहं-निर्मम हो जाओगे, तब तुमको अनन्त शान्ति मिलेगी । ब्राह्मी स्थिति की प्राप्ति हो जायेगी और फिर कभी भी मोह नहीं होगा और मरने के बाद भगवान् की प्राप्ति निश्चित समझो |

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/७२)

इसलिए छोटी-छोटी कामनाओं को जड़ से मिटा देना चाहिए लेकिन हम सभी लोग चोर हैं केवल ऊपर से ही निष्कामता का ढोंग करते हैं परन्तु भीतर हमारे हृदय में कामनाएँ रहती हैं। अगर चोरी न रहे तो अभी भक्ति आ जाएगी ।

श्रीराधासुधानिधि

(श्रीयुगलरसमयी 'ब्रजभूमि')

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (३,४/५/१९९८) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी श्यामाजी, मानमंदिर, बरसाना)

जिस समय श्रीराधारानी पनघट से लौट रही हैं, उस समय सुविशेष सुशोभनीय अद्भुत छटा दिग्दर्शित हो रही है –

गागरि नागरि लिए पनघट ते, चली घरहि को आवै ।
ग्रीवा डोलत लोचन लोलत, अलकें चितहि चुरावै ॥

उनकी ग्रीवा हिल रही है, नेत्र चंचल हैं –

छिटकत चलै मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै ।

श्रीजी रुक-रुक कर चल रही हैं, जैसे कोई झूमता हुआ गजराज जा रहा है । कभी-कभी राधारानी अपने अंचल को उतारकर फिर से ओढ़ लेती हैं ।

"मनहु काम सेना अंग शोभा,अंचल ध्वज फहरावै ॥"

जो राजा युद्ध में विजय प्राप्त कर लेता है, उसका झंडा फहरता है । सूरदास जी अत्यंत सुंदर ढंग से वर्णन करते हैं कि श्रीजी ने अपनी ओढ़नी को उतारकर फिर से ओढ़ लिया, इस प्रकार उनकी विजय हो गयी और श्यामसुंदर पराजित हो गए । "गति गयंद कुच कुम्भ किंकिणी, मनहु घंट झहरावै ।" जैसे कोई हाथी जाता है तो उसके शरीर पर घंटे लगे होते हैं, वे घन-घन बजते हैं, वैसे ही श्रीजी की किंकिणी में जो घंटियाँ लगी हैं, वे इस प्रकार बज रही हैं मानो हाथी के घंटे का शब्द हो रहा है । "मोतिन हार जलाजल मानो, सुधि दन्त झलकावै ॥" 'बेसर की एक लड़' कान की ओर जा रही है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो ललाट रूपी चंद्रमा महावत ने मस्त हाथी पर अंकुश चलाया है । श्रीजी के चरणों में जेहरी है, जैसे हाथी के पाँवों में बेड़ी डाल दी जाती है – **"पग जेहरी जंजीरनि जकड़्यो, यह उपमा कछु पावै ।"** श्रीजी के शीश पर धरी स्वर्ण कलसी से कभी-कभी जल श्रीजी के शीश पर धरी स्वर्ण कलसी से कभी-कभी जल श्रीजी के शीश पर धरी स्वर्ण कलसी से कभी-कभी जल की बूंद छलकती है, उनके कपोलों पर आती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो हाथी के शरीर से मद चू रहा है ।

"घट जल छलकि कपोलन किनुका, मानो मदहि चुवावै ॥
बेनी डोलति दुहूँ नितम्बनि, मानहु पूंछ हिलावै ।
गज सरदार सूर को स्वामी, देखि-देखि सुख पावै ॥"

जिन श्रीकृष्ण का दर्शन बड़े-बड़े योगीन्द्र लोग नहीं पाते हैं, वह श्रीराधिकारानी की अंचल की हवा पाकर के ही धन्य हो जाते हैं । श्रीकृष्ण कैसे श्रीराधिकारानी के अंचल को पाकर धन्य हुए, यह लीला अलग-अलग ढंग से सभी रसिक महापुरुषों ने लिखी है, सबके अनुभव अलग-अलग हैं । एक तो होती है स्फूर्ति और एक होता है अनुभव । यह विशेष ध्यानपूर्वक समझने का प्रसंग है । स्फूर्ति का स्वरूप यह है कि ध्यान में बैठे हैं तो चित्त में श्यामसुन्दर का पटका (पीताम्बर) उड़ता हुआ आया और चला गया, इसे स्फूर्ति कहते हैं । थोड़ी देर के लिए हृदय में भगवान् की झांकी आई और चली गयी । अनुभव इससे आगे की बात होती है । बहुत देर तक कोई लीला दिखाई पड़े, उसको अनुभव कहते हैं । श्रीराधासुधानिधि के बहुत से टीकाकार हुए हैं । आश्चर्य की बात तो ये है कि अधिकतर लोगों ने अंचल-लीला को स्फूर्ति बताया परन्तु यह स्फूर्ति नहीं है, ये तो ग्रंथकार का अनुभव है । स्फूर्ति से आगे की कोटि होती है अनुभव । अपने-अपने भाव हैं, जिन्हें टीकाकारों ने लिखा है । श्रीबाबा महाराज के मतानुसार जितने भी रसिक हुए हैं, इनको जो-जो लीला दिखाई पड़ी, जिसको जो अनुभव हुआ, उसको उसने लिखा; ऐसा समझ लो कि आँखों देखी बात लिखी है । जैसे - एक

ही लीला को रसिक महापुरुषों ने अपने-अपने भावानुसार लिखा है, जिसको जैसा अनुभव हुआ | जैसे कि श्रीमद्भागवत में रासपंचाध्यायी है, इसके बहुत से टीकाकार हैं और जिसने जो लिखा वह उचित लिखा है | भावुक बनना चाहिए, भावुक का अभिप्राय है कि सबका सम्मान रखो | जो लाड़लीजी के कृपापात्र हैं, वे किसी भी सम्प्रदाय के हैं अथवा किसी भी उपासना-पद्धति में हैं, उनमे श्रद्धा करना चाहिए |

अंचल का प्रसंग चल रहा है, खोर सांकरी में दान के समय श्रीलाड़लीजी का अंचल श्रीकृष्ण ने पकड़ा था | गह्वरवनलीला में भी अंचल की वायु की सुगंध से नंदनन्दन को पता लग जाता है कि लाड़लीजी आ रही हैं | ललिताजी से श्यामसुन्दर बोलते हैं कि 'देखो, लाड़ली जी दूर से आ रही हैं, तुम कहती हो कि राधारानी यहाँ नहीं हैं | अरे ! उनकी अंग की सुगंध उड़ती हुई आ रही है |' गह्वरवन के बाद यमुनातट पर वन विहार में भी अंचल लीला हुई है | अब एक और प्रसंग किसी रसिक महापुरुष ने लिखा है कि चतुर नायक और नायिकाएँ प्रेम की कला में बहुत चतुर होते हैं क्योंकि प्रेम चतुर लोग ही करना जानते हैं | प्रेम की कला भी सब नहीं समझ सकते | जैसे रसिकों ने कहा है –

नैन जुराये न जुरे, पट घूँघट की ओट |
सुभग नारि और सूरमा, करें लखन बिच चोट ||

लक्ष्य कोसों दूर पर है लेकिन कुशल धनुर्धारी बाण मारते हैं तो वहीं जा करके लगता है | उनका निशाना चूकता नहीं है | अर्जुन ने द्रौपदी को कैसे पाया था ? द्रौपदी को वही पा सकता था जो संसार का सबसे श्रेष्ठ धनुर्धारी हो | एक कढ़ाव नीचे रखा था और कढ़ाव के ऊपर आकाश में दूर एक चक्र घूम रहा था जैसे बिजली का पंखा घूम रहा हो, उस चक्र के अन्दर एक मछली थी, मछली की आँख में बिना देखे बाण मारना है, केवल कढ़ाव में भरे जल में मछली की परछाईं देखकर निशाना साधना है; कितना कठिन काम है ...!! मछली की ओर देखना नहीं है, मात्र परछाईं की ओर देखकर ऊपर बाण का सन्धान कर दो | रसिकों ने लिखा है कि उससे भी कठिन कार्य नायिक नायिकाओं का होता है | ऐसा क्यों है ? युद्ध में तो योद्धा लाखों आदमियों के बीच में देखकर शर सन्धान करता है, वहाँ तुमको देखने की आज्ञा है किन्तु श्रृंगार रस में तो देखने की भी आज्ञा नहीं है क्योंकि उसमें लज्जा होती है, घूँघट का आवरण होता है परन्तु लाखों के बीच में बिना देखे, घूँघट की ओट में भी चलाने वाले चोट चला देते हैं; वे कितने चतुर होते हैं, कोई जान नहीं पाता | आँखों से आँख मिलाकर नहीं देख सकते हैं क्योंकि लोकलाज है कि संसार कलंकित कर देगा | इसलिए घूँघट का पर्दा है; यह रसशास्त्र बहुत ही चतुरों का काम है, रस को समझना ही बड़ा कठिन है | यह तथ्य बारम्बार ध्यान देने योग्य है कि श्रृंगाररस, प्रेमरस के कारण ही 'ब्रजभूमि' परममंगलकारी व सम्पूर्ण विश्व में सुप्रसिद्ध है | मधुराधिपति भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सर्वाधिक माधुर्य-प्रेम-रसमयी लीलायें ब्रजभूमि में ही प्रकट किया, इसलिए ये भूमि युगलरसमयी होने से परमवन्दनीय हुई | नायिक-नायिकाओं के अनेकों भाव होते हैं, जैसे किसी नायक ने सोचा कि मैं कहाँ जाऊँ, नायिका से मिलन कैसे हो, इतने में सामने देखा कि नायिका कदम्ब पुष्प फिरा रही थी | इस संकेत से तुरन्त समझ लिया कि कदम्ब की वाटिका में जाना है | इसको कोई अन्य नहीं समझ पाता | ओढ़नी, पीताम्बर आदि विभ्रम की कोटि में आते हैं | इनके हाव भाव, इनकी चेष्टाओं को चतुर नायिक-नायिकाएं ही समझ सकते हैं |

(क्रमशः)

हे नाथ ! सबसे बड़ी आपकी जो विशेषता है, जो आपकी ठकुराई है वो ये है कि आपका नाम जीव की वासनाओं का हरण कर लेता है । वासनायें अनन्त हैं और बिना वासनाओं के समाप्त हुए बंधन नहीं छूटेगा । अनन्त कर्म हैं, अनन्त उनकी वासनाएँ, अनन्त गांठें हैं, उनको आपका नाम जला देता है, तब जीव आपकी ओर चलता है । तब जीव आपका भजन कर सकता है । वासनाओं वाला आपका भजन नहीं कर सकता है । वह गिरेगा और लौट जायेगा ।

गोपी-गीत

(सत्संग से स्मृति-संप्राप्ति)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (३/११/१९९५) से संग्रहीत
संकलन/लेखन- डॉ.रामजीलाल शास्त्री बी.एस.सी.,एम.ए.द्वय(हिंदी,संस्कृत)
बी.एड.आचार्य (साहित्य),पी.एच.डी., अध्यक्ष- मान मन्दिर सेवा संस्थान, बरसाना

वास्तविकता यही है कि एक क्षण में भगवान् करोड़ों कल्पों का सृजन कर देते हैं और करोड़ों कल्पों को एक क्षण बना देते हैं | इसे समझने हेतु उदाहरण है श्रीकागभुशुण्डिजी का | एक बार कागभुशुण्डिजी भगवान् राम की बाललीला देख रहे थे | बालक मूर्ख की तरह क्रियाएँ करता है, बालक तो बालक ही है, वह कभी तो रोता है, कभी डरता है, कभी-कभी चीखता-चिल्लाता है, इसी का नाम बाललीला है | बालक कब मचल जाएगा, कब हँस जायेगा, कुछ पता नहीं पड़ता, क्योंकि वह नासमझ होता है, उसके समान मूर्ख कोई नहीं होता है, कहो तो आग को पकड़ ले क्योंकि उसे कोई ज्ञान नहीं है; ऐसी ही बाललीला भगवान् राम कर रहे थे - जब काकभुशुण्डिजी उनसे दूर होते तो बालक राम रोने लग जाते थे, जब पास आते तो भाग जाते थे | बच्चा भागता है, डरता है, ये सब बाललीला है, बालक का इतना सरल स्वभाव होता है कि उसको कह दो कि 'हऊआ आया' तो डर जाएगा | यशोदा मैया भी श्यामसुंदर को डरवाती थीं कि हऊआ आया...|

जब रामजी कौआ को देख करके भयभीत होकर भागे तो ये सब लीला देखकर काकभुशुण्डिजी को मोह हो गया और केवल उतनी ही लीला भगवान् ने नहीं किया | संकेत में बहुत-सी बातें कही हैं कागभुशुंडिजी ने, वह कहते हैं कि भगवान् राम के बालचरित्र देखकर मुझको ऐसा मोह हुआ कि उसे कहने में भी लज्जा आती है –

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा |
बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ||
आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं |
जाऊँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ||
प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह |
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ||

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ७७)

इस लीला को देख करके कागभुशुंडिजी को मोह हुआ और मोह के बाद बालक राम ने उन्हें पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया तो ये भाग चले | जब भागे तो रामजी की भुजा ने इनका पीछा किया, छोटे-से बालक की भुजा इन्हें पकड़ने चलती, बस, दो अंगुल का फासला रहता था | भागते-भागते वह सातों आवरणों को भेद करके ब्रह्मलोक और उसके बाहर भी गए और अंत में थक गए, भयभीत होकर नेत्र बंद कर लिया | जीव थक जाता है, उसमें क्या शक्ति है ? शक्ति का मूल स्रोत तो भगवान् ही हैं | जब उन्होंने आँखें खोलीं तो देखा कि मैं अयोध्या में हूँ और छोटे से बालक राम हँस रहे हैं | जब रामजी हँसे तो कागभुशुंडिजी उनके मुँह में पहुँच गए, उसके भीतर उन्हें बहुत से ब्रह्मांड दिखाई पड़े | करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों शिव का दर्शन किया और एक-एक ब्रह्मांड में वह सौ-सौ साल तक रहे, जिसकी कोई गिनती नहीं है | अब देखिये, इतना समय बीत गया, अगणित वर्ष बीत गए

भ्रमत मोहि ब्रह्माण्ड अनेका |
बीते मनहुँ कल्प सत एका ||

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ८२)

सौ कल्प बीत गए | एक कल्प ब्रह्माजी के दिन को कहते हैं, एक कल्प में लगभग चार अरब तीस करोड़ वर्ष होते हैं, इतनी ही बड़ी उनकी रात भी होती है | अब सैकड़ों कल्पों तक कागभुशुंडिजी भटकते रहे और फिर अपने आश्रम नीलगिरि पर आये | उस समय अवतार हुआ था राम जी का तो फिर वह अयोध्या गए और वहाँ जब गए तो देखा कि रामजी का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है और अभी तो दो घड़ी ही बीते थे | अब आप विचार करो कि कैसी विचित्र भगवान् की मायाशक्ति है कि दो घड़ी में सैकड़ों कल्पों का समय बीत गया | इससे अनुमान लगाना चाहिए कि कितना अनंत शक्तिशाली है परब्रह्म-परमात्मा,

जो कालों का महाकाल, महाकालों का भी परमकाल है; दो घड़ी में सैकड़ों कल्प बिता देता है अर्थात् असंभव को सम्भव कर देता है ? जबकि एक कल्प में चार अरब तीस करोड़ वर्ष के हिसाब से लगभग साढ़े आठ अरब वर्ष का ब्रह्माजी का एक दिन-रात होता है | इस संख्या को सैकड़ों से गुणा कर दो तो उतना समय बीत गया और जब अयोध्या में आये तो बोले –

उभय घरी महँ मैं सब देखा |
भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा ||

अभी दो घड़ी का समय बीता था, इससे उनको और अधिक मोह हुआ, उनको देख करके बालक राम हँस गए तो क्या देखते हैं कि वह उनके मुख से बाहर निकल आये और – **"सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम |"**

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ८२)

फिर प्रभु वही बाललीला करने लग गए, कहीं कौवा को देखकर डर के भाग रहे हैं, कभी उसको पकड़ना चाहते हैं | इस प्रकार से एक उदाहरण दिया गया कि कालशक्ति भगवान् की है और वही इसके एकमात्र स्वामी हैं, वे एक क्षण में करोड़ों कल्पों की घटना को बिता दें और करोड़ों कल्पों की घटना को छोटा करके एक क्षण बना दें, यही उनकी भगवत्ता है | प्रसंग उठा था कि हमारे चित्त में अनंत कर्म लिखे हैं, ये सब मायाशक्ति की विचित्रता है, वहाँ ये नियम लागू नहीं होता कि ये पांच सौ पेज की पुस्तक है तो कॉपी भी (पांच सौ पेज की) उतनी ही मोटी बनानी चाहिए, वहाँ यह फार्मूला नहीं है | वहाँ तो लाख-करोड़ नहीं, अनंत पेज की पुस्तक है और उसको एक बिंदु में लिखा हुआ है | इस प्रकार हमारे चित्त में अनंत कर्म लिखे हुए हैं | आप विचार करो कि मायाशक्ति कैसी विचित्र है कि एक बिंदु में सिन्धु भरा हुआ है | हर जीव के अनंत कर्म उसके चित्त में हैं और चित्त शुद्ध तब होता है जब मन से कर्म समाप्त हो जाते हैं | सब साधन 'चित्त-शुद्धि' के लिए ही किये जो यह शीशा है, इसमें अनंत संस्कार रूपी पिक्चर (फोटो) बनी हुई हैं | हर चीज का चित्त में संस्कार रूपी एक पिक्चर बनता है, जैसे - एक कैमरा होता है, कैमरे का बटन दबाइए तो मुख (जो बिम्ब है) का प्रतिबिम्ब कैमरे में आ जाता है और लोग कहते हैं कि फोटो खिंच गया | इसी प्रकार चित्त एक ऐसा कैमरा है कि इसमें अनंत चित्र बने हुए हैं, अगणित फोटो इसमें बनी हुई हैं, जैसे हमलोग देख के पहचान जाते हैं कि यह मोर है, ये नेवला है, ये कौआ है, ये हमारे काका जी हैं, ये हमारे चाचा जी हैं | ये सीताराम दास बैठे हैं, ये गोपालदास बैठे हैं, यह उनकी आवाज है, ये छाछ है, ये मट्ठा है, ये दही है, ये दूध फट गया है, ये खीर है, ये विभिन्न व्यंजनों का स्वाद है, ये कोयल की आवाज है, ये सब पहचान चित्त में लिखी हुई है | अच्छे संस्कारों को जाग्रत करने के लिए भक्तिमय वातावारण की आवश्यकता पड़ती है, इसीलिए सत्संग किया जाता है | महाराज पृथु जी के सामने जब भगवान् प्रगट हुये तो उन्होंने पृथु जी से कहा कि तुम मुझसे जो चाहो सो वरदान माँग लो - अनन्त जीवन माँग लो, ऋद्धियाँ- सिद्धियाँ ले लो, त्रिलोकी का राज्य ले लो, कुछ भी ले लो | पृथुजी महाराज बोले कि हे भगवन् ! ये सब व्यर्थ का प्रपंच है, इसे मूर्ख लोग ही लेते हैं | लेना वह चाहिए जिससे अखण्ड भगवत्स्मृति बनी रहे | हमारे चित्त में जो अनेकों सांसारिक संस्कार हैं, वे सब अंतःकरण में छाये हुए हैं, जिनके कारण हमारी वैशारदी बुद्धि (ध्रुवा स्मृति) ढकी हुई है | जैसे - आग को बहुत अधिक राख के ढेर से ढक दो तो कोई नहीं समझेगा कि इसके भीतर आग है | एक बहुत बड़ा राख का पहाड़ है और आग की चिंगारी भीतर है; वैसे ही अनन्त कर्म-संस्कारों ने हमारी शुद्ध स्मृति (हम भगवद्दास हैं, भगवान् के अंश हैं) को ढक दिया है, जो विशुद्ध संत-महापुरुषों के सत्संग से ही पुनः वास्तविक स्वरूप में संप्राप्त होगी |

क्रमशः

श्याम का मुख कितना मीठा है, कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, मीठी-मीठी मुस्कान है, श्याम की बोलन कितनी मीठी है, उसकी लीला कितनी मीठी है, पीताम्बर कितना मीठा है, पीताम्बर की लपेटन कितनी मीठी है, अरे ! भगवान् की बंसी कितनी मीठी है, भगवान् के कर कमल कितने मीठे हैं, चरण कितने मीठे हैं, जिनकी लक्ष्मी भी दिन-रात सेवा करती हैं । कैसा सुदर नाचता है कान्हा ! ऐसा मीठा-मीठा है श्याम । अरे ! हम कहाँ तक कहें, ऐसा मीठा जब हमारे हृदय में आ जाय तो संसार के सब रंग फीके हैं ।

भगवन्नाम-महिमा

('भगवन्नाम' से व्यक्ताव्यक्त-सृष्टि)

श्रीबाबा महाराज के सत्संग २२/०५/२०१० से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री, लेखिका- साध्वी अचलप्रेमाजी, मान मन्दिर, बरसाना)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है –

बंदउँ नाम राम रघुवर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र इनका हेतु (कारण) भगवन्नाम है | कारण कई प्रकार के होते हैं - एक होता है 'आदिकारण' और दूसरा 'बीजकारण'; फिर कारण के भी दो भेद हो जाते हैं - निमित्त और उपादान, अतः भगवन्नाम ही सब कुछ है | जैसे - कुम्हार घड़ा बनाता है तो बनाने वाला जो कुम्हार है वह निमित्त कारण है और मिट्टी उपादान कारण है | मिट्टी को लेकर के कुम्हार ने घड़ा बना दिया तो मिट्टी तो है उपादान कारण और कुम्हार है निमित्त कारण | इसलिए राम नाम को गोसांईजी ने कारण और बीज दोनों माना, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा को पहले लिया और उसके बाद में बह्मा, विष्णु, महेश को लिया |

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो।
अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

इन सबका कारण गोस्वामीजी ने नाम को ही माना है, एक तो यह होता है कि गोस्वामीजी ने लिख दिया, अतः श्रद्धा से मान लिया लेकिन यह बात वैज्ञानिक-परिवेश में भी यथार्थ सत्य है | ब्रह्म के दो भेद किये गये हैं –

शब्दब्रह्म और नादब्रह्म | शब्दब्रह्म, जैसे कि ॐकार है अकार, उकार, मकार ये तीन व्याहृतियाँ है अथवा जैसे - रामनाम में पाँच व्याहृतियाँ है, कृष्ण नाम में भी पाँच व्याहृतियाँ है | 'शब्द ब्रह्म' ही 'नाद ब्रह्म' है, इसको स्फोटवाद कहते हैं, 'स्फोट' अर्थात् ऐसा शब्द जिसका आगे विस्तार होता है तो उस स्फोट से ऊर्जा पैदा हुई | वैज्ञानिक-दृष्टि से सबसे पहले समझें कि 'सृष्टि' व 'प्रलय' क्या है? जो सूक्ष्म से स्थूल की ओर विकास करती है उसे 'सृष्टि' कहते हैं और स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना 'प्रलय' है | सृष्टि-प्रलय समझने के बाद यह बात समझ में आती है कि भगवन्नाम से ही अनंत संसार प्रकट हुआ और ये सब भगवन्नाम का ही विकास है, तब उसमें एक आस्था बढ़ती है | इसी बात को भागवत में बताया गया कि पहले सृष्टि अव्यक्त थी, फिर वह व्यक्त हुई | जैसे कि पानी में से बिजली प्रकट हुई, तो जल में बिजली पहले से थी लेकिन अव्यक्त रूप में थी | फिर उस बिजली को साधनों से प्रकट किया गया तो वह व्यक्त बन गई | (ये सब वैज्ञानिक बातें हैं), बिजली अव्यक्त रूप से कैसे थी? जितनी भी अव्यक्त रूप से शक्तियाँ हैं उनका नाम है – 'ऊर्जा |' अव्यक्त स्वरूप ऊर्जा कहाँ से आयी ? इसे गोसांईजी ने मानसजी में सम्यक् रूपेण लिखा है –

बंदउँ नाम राम रघुवर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

सूर्य, चन्द्र, अग्नि को ब्रह्मादि से पहले लिया और शिवादि को बाद में लिया, उसका कारण है कि 'ऊर्जा' ही सृष्टि को चलाती है, 'ऊर्जा' ही सृष्टि का उपादान कारण बनती है, इस दृष्टि से पहले उन्होंने भानु को लिया | गोस्वामीजी ने बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से लिखा है, उन्होंने सबसे पहले अग्नि को लिया, फिर सूर्य को, फिर चन्द्रमा को लिया | प्रथम अग्नि को क्यों लिया? ऊर्जा में ऊष्मा होती है, कहीं की भी ऊर्जा हो, अग्नि का स्वरूप है ऊष्मा | तर्कसंग्रह, व्याकरण आदि में ऊर्जा का लक्षण लिखा है – ऊष्णस्पर्शवत्, जल का लक्षण है - शीतस्पर्शवत् | इसलिए गोसांई जी ने पहले अग्नि को लिया है और उस सम्पूर्ण ऊर्जा का केन्द्र है सूर्य, फिर सूर्य से चन्द्रमा में ऊर्जा जाती है, सूर्य से ऊर्जा सारे संसार में वितरित होती है | सूर्य से ही ऊर्जा जल में गिरकर अव्यक्त रूप से जमा हो गयी और वृक्षों में भी सूर्य से ऊर्जा आई है |

एक दिल्ली के प्रोफसर (जो भूगोल के विभागाध्यक्ष थे) से श्रीबाबामहाराज ने पूछा कि पृथ्वी की आयु क्या है? उन्होंने बताया कि लगभग दो अरब वर्ष है | बाबाश्री ने पूछा कि आपने कैसे जाना ? वह बोले कि सूर्य की किरणें भूमि के अन्दर सुदूर जाती हैं, उनसे जो प्रतिक्रिया (reaction) होती है, उसी से हमलोग पता लगा लेते हैं | 'ऊर्जा' शक्तिरूपा है जो नष्ट नहीं होती है, नदियों में गयी तो नदियों ने उसको जमा कर लिया, जो टरबाइन मशीन के द्वारा बिजली बन गई (जल में अव्यक्त ऊर्जा का प्रकट रूप ही बिजली है) |) अव्यक्त से व्यक्त की ओर चलना ही सृष्टि है और व्यक्त से अव्यक्त की ओर जाना 'प्रलय' है | अब जैसे - ऊर्जा पत्थर के कोयले से प्रकट होती है, उसमें ऊर्जा कहाँ से आयी? जो वृक्ष कभी भूचाल के कारण अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को लेकर भूमि में प्रवेश कर गये थे, वे ही भीतर दबे-दबे पत्थर बन गये, तो उसमें पहले से ही ऊर्जा विद्यमान थी जो सूर्य से मिली थी, फिर उसको खोदा गया तो पत्थर के रूप में कोयला निकला, जिसको जलाने से पुनः ऊर्जा प्रकट हुई | यहाँ तक कि तकनीकी विशेषज्ञ लोग कूड़े से भी बिजली बनाते हैं | 'गोबर गैस प्लांट' गोबर से बनाते हैं, कूड़े से बनाते हैं, ये सारी चीजें बता रही हैं कि इस सारे संसार में ऊर्जा सब जगह है और उसको धीरे-धीरे प्रकट करने का ढंग मनुष्य सीखता है | जैसे सूर्य की किरणों से बिजली बन रही है, उसे सौर ऊर्जा कहते हैं, इन सबका धीरे-धीरे विकास भी हो रहा है | एक उदाहरण से समझो कि पहले सृष्टि अव्यक्त रूप में थी, फिर वह महाप्रलय के समय में अव्यक्त-शक्ति भगवान् में लीन हो जाती है, फिर अव्यक्त से व्यक्त बनती है |

एक दूसरा उदाहरण देते हैं (क्योंकि बिना उदाहरण के साधारण आदमी नहीं समझेगा) – जैसे गहरी नींद (स्वप्न भी नहीं देख रहा) में कोई आदमी सो रहा है; ये अव्यक्त स्थिति है | वहाँ उसे कुछ भी पता नहीं है कि मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, साधु हूँ, विरक्त हूँ, गृहस्थ हूँ, बालक हूँ, बूढ़ा हूँ, स्वस्थ हूँ, अस्वस्थ्य हूँ | जब उसको झकझोरा तो उसकी चेतना व्यक्त हुई, व्यक्त होते ही सोचता है कि मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, चेतना से बुद्धि आई, फिर उसमें अहं की प्रतीति हुई | अब उसके बाद वह सोचने लग गया कि हमको ये काम करना है, यहाँ जाना है, वहाँ जाना है | जल्दी से उठें, नहायें-धोयें, तैयार होंयें | सृष्टि पहले अव्यक्त थी फिर व्यक्त बनी | चेतना (चेतना ही ज्ञान है) जैसे ही जागती है, वैसे ही बुद्धि आ जाती है | (बुद्धि तत्त्व ही महत्तत्व है |) जितनी शुद्ध चेतना होगी उतना ही बुद्धि का विकास होता है, शराब पी लो तो बुद्धि का विकास खत्म हो गया | बुद्धि आते ही मनुष्य सोचता है कि मुझे ये करना है, वह करना है | इस प्रकार सृष्टि अव्यक्त से व्यक्त बनने के बाद उसमें महत्तत्व (बुद्धितत्व) आया | समष्टिबुद्धि का अधिदैव रूप है 'ब्रह्मा' | बुद्धि के बाद फिर अहं तत्त्व (मैं) बना, फिर अहं के तीन भेद हो जाते हैं | अहं त्रिगुणात्मक है, क्योंकि सृष्टि त्रिगुणात्मक है | अब तीनों गुणों का विभाग 'अहम्' से शुरू हुआ, इसके पहले विभाग नहीं था, जैसे - बीज में से अंकुर फूटने के बाद आगे चलकर पेड़ की शाखाएँ निकलने लग जाती हैं | अब प्रकृति और अधिक स्पष्ट रूप में आयी कि त्रिगुणात्मक है | सात्विक अहंकार जिसको 'वैकारिक अहंकार' भी कहते हैं, राजस अहंकार जिसको 'तैजस अहंकार' भी कहते हैं और तामस अहंकार, इस प्रकार अहं के तीन भाग हैं | एक ही प्रकृति सब काम कर रही है |(क्रमशः)

हे नाथ ! मैं कभी मनुष्य बना, कभी कुत्ता बना, कभी गधा बना, कभी सर्प बना, जाने कितने रूप बदल-बदल कर नाचा । अब आपने मनुष्य बना दिया तो भी वही माया का नाच, विषयों का नाच नाचा लेकिन आपके प्रेम का नाच नहीं नाच पाया । हे मोर मुकट वाले श्याम ! भक्त रखवाले श्याम ! मेरी रक्षा करो, हे नाथ ! मेरी रक्षा करो । इन विषयों से मेरी रक्षा करो । काम-क्रोध से रक्षा करो । रक्षा करो, रे प्रभु रक्षा करो । हे नाथ ! अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल ।

धाम-महिमा (सम्यक् धाम-सेवन से यथार्थ लाभ)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (७/५/२००६) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री, लेखिका- साध्वी गोपालीजी, मानमन्दिर, बरसाना)

धाम-निष्ठा के बारे में रसिक महापुरुषों ने तो यहाँ तक कह दिया – **रे मन वृंदाविपिन निहार |**

विपिनराज सीमा के बाहर, हरि हू को न निहार ||

(श्री भट्टजी)

ब्रज के बाहर तो भगवान् को भी मत देखना, श्रीधाम का ही मन-वचन-कर्म से अवलोकन-कथन-सेवन करो | धाम सबसे सरल होते हुए भी क्या कारण है कि हम जैसे लोगों को कोई अनुभूति नहीं हो रही है; ये भी तो विचार करना चाहिए, औषधि खा रहे हैं फिर भी रोग बढ़ रहा है, इसका कोई कारण अवश्य होगा; जैसे - किसी ने एक रोगी से पूछा कि क्या आपको जुकाम है, उसने उत्तर दिया कि हाँ जी, जुकाम है | पूछने वाले ने सलाह दी कि सात नीम की पत्ती, सात काली मिर्च, सात तुलसी की पत्ती को लेकर उनको औटा कर पी लो | जुकाम का रोगी बतायी विधि के अनुसार सब पत्तियाँ लाया लेकिन औटाना भूल गया और सुबह के समय पत्तियों को पीसकर ठण्डे पानी के साथ पी गया, इससे अनुपान गलत हो गया, औषधि तो ठीक थी किन्तु उसकी सेवन-विधि गलत थी; वैसे ही धाम में हम रह रहे हैं किन्तु प्रतिक्षण हमारी भावना बढ़ नहीं रही है तो अवश्य ही अनुपान में कोई गड़बड़ी है, इसलिए उसका ठीक फल नहीं मिल रहा है | निरन्तर विचार करना चाहिए कि हमारी चित्तवृत्तियाँ क्या सच्चाई से इष्ट की ओर चल रही हैं या लड्डुआ-पूड़ी, भोग आदि की ओर चल रही हैं अथवा अन्य दोष-दर्शन की ओर चल रही हैं | सच्चा साधन तो मन से होता है, ये बात सभी संत-महापुरुषों ने कही है, कृष्णदास कविराज भी कहते हैं-

बाह्य अन्तर इहार दुई तो साधन, बाह्य देहे करे श्रवण-कीर्तन, आन्तर करे निज भावन ||

प्रभु की आराधना नहीं है तो सब कर्म बेकार हैं ।

अर्थात् साधन के दो पक्ष बताये गये हैं - बाह्य और भीतर | नाम-संकीर्तन, जप आदि बाह्य साधन है और भीतर तुम्हारी जो भावनाएँ हैं, वह आन्तरिक साधन होता है; इस पर विचार करना चाहिए कि हमारे मन की दौड़ा-दौड़ी किधर हो रही है, इतने साल हो गए माला फेरते-फेरते परन्तु चित्तवृत्तियों का प्रवाह किधर है ? इसीलिए इस बात को कड़े शब्दों में सावधान करते हुए कबीरदासजी ने कहा है -

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर |

कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ||

इसका यह मतलब नहीं है कि जप आदि का खण्डन किया जा रहा है, इसका अभिप्राय यही है कि जैसा शास्त्र वचन है- **'तद्जपस्तदर्थभावनम्'** - तुम्हारा मन कृष्ण को छू रहा है कि नहीं क्योंकि साधन तो मन से होता है | पतंजलि भगवान् ने कहा – **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' -** चित्तवृत्तियाँ हमारी कहाँ जा रही हैं, हमारे अन्तःकरण का प्रवाह किधर है; ये एक अच्छे साधक को विचार करना चाहिए | यदि साधक ऐसा नहीं सोचता है तो विवेक उत्पन्न नहीं होगा| विवेक तभी होता है जब सत् के ग्रहण करने और असत् के त्याग का चिन्तन होता है | हम जैसे लोगों में श्रद्धा-भाव की कमी है और जिस ढंग से धाम में रहना चाहिए, उस ढंग से हम नहीं रह रहे हैं | हमारा अनुपान गलत है, रहने का ढंग गलत है, इसलिए हमारे हृदय में धाम-धामी के प्रति विशुद्ध भाव-प्रेम का उदय नहीं हो रहा है | इसलिए **'सत्कारासेवितो'** अर्थात् कथनाशय है कि श्रद्धा-विश्वास से सतत् सावधानीपूर्वक साधन करते हुए धाम का सेवन करना चाहिए, जिससे सहज ही धाम के प्रभाव से धामी की संप्राप्ति हो जाती है | इस विषय में एक सच्ची घटना है कि जब बाबाश्री पहली बार ब्रज में आये तो उन्होंने सुना कि ब्रज में चौरासी कोस की परिक्रमा लगाई जाती है तो

इसके प्रति उनकी उत्सुकता जागृत हुई | उसी समय बरसाने में किसी सम्प्रदायविशेष की यात्रा आयी थी | उन दिनों वह यात्रा बहुत विशाल रूप में होती थी, अब तो वहाँ भी आपसी फूट पड़ गयी है | श्री बाबा बरसाने में रुकी उस यात्रा को देखने गये तो उनके मन में विचार आया कि यहाँ किससे बात करें | वहाँ अनेकों प्रकार की दुकानें लगी थीं, लोग खरीददारी करने में व्यस्त थे | श्री बाबा ने किसी व्यक्ति से पूछा कि क्या इस यात्रा में कोई अच्छे अनुभवी वैष्णव हैं तो उन्होंने किसी पुराने अच्छे वैष्णव के बारे में बताया | श्रीबाबा उन वैष्णव के पास पहुँचे, एक व्यक्ति भी साथ में गया और उसने उन वैष्णव को बाबा महाराज का परिचय दिया कि ये मानमन्दिर से आये हैं | परिचय पाकर वह वैष्णव श्रीबाबा से अत्यन्त प्रेम से मिले | श्रीबाबा ने उन वैष्णव से कहा कि हमने सुना है कि आप इस यात्रा के सबसे पुराने वैष्णव हैं इसलिए हम आपके अनुभव से कुछ सीखने के लिए आये हैं | वैष्णव जी ने पूछा- आप मुझसे सीखने आये हैं किन्तु आप तो साधु हैं और मानगढ़ पर अकेले रहते हैं | इसलिए आप मुझे कुछ सिखाइये क्योंकि मैं प्रतिवर्ष ब्रजयात्रा करने ब्रज में आता हूँ | श्री बाबा ने कहा कि पहले आप कुछ अपना अनुभव सुनाइये तो वह वैष्णव बोले कि पहले आप मेरी एक शंका का समाधान कीजिए फिर मैं आपको अपना अनुभव सुनाऊँगा | वह बोले कि यह मेरी तैंतीसवीं ब्रजयात्रा है अर्थात् इसके पहले बत्तीस बार वह ब्रजयात्रा कर चुके थे | श्री बाबा ने सोचा कि ये तो बहुत बड़े महापुरुष हैं, ३२ बार ब्रजयात्रा कर चुके हैं, फिर बाबा ने कहा कि क्या अब भी आपकी कोई शंका रह गयी है? वह वैष्णव बोले कि जब आरम्भिक दिनों में मैं ब्रजयात्रा करता था तो जब कामवन से बरसाना की ओर चलता था तो मार्ग में दूर से जब श्रीजी मन्दिर का शिखर दिखाई पड़ता था तो आँखों में आँसू आने लगते थे कि यह राधारानी का भवन है, इसी प्रकार नंदगाँव के नन्दभवन का शिखर दिखाई पड़ता तो अपार हर्ष होता था, रोता था मैं, उस समय बड़ा आनन्द होता था परन्तु अब वह आनन्द नहीं रहा | प्रतिवर्ष मैं ब्रज में आता हूँ, ३३वीं यात्रा है यह, किन्तु पहले यात्रा में जो आनन्द आता था, ऐसा आनन्द अब नहीं आता, इसका कारण क्या है? कृपया आप मुझे बताइये | उनके ऐसा पूछने पर श्री बाबा ने सोचा कि हम तो इनसे अनुभव पूछने आये थे कि आप इतनी अधिक यात्रा कर चुके हो तो आपको श्रीजी-ठाकुरजी का दर्शन अवश्य हुआ होगा | जैसे - ब्रज में एक पद प्रचलित है – "**डगर चल गोवर्धन की बाट | खेलत तोहे मिलेंगे मोहन, गोवर्धन की बाट ||**" यह सब महापुरूषों के ग्रन्थों में लिखा है कि जब ब्रज में कोई आता है तो कहीं वंशी सुनाई पड़ती है, कहीं कुछ अनुभव होता है | किसी न किसी रूप में ठाकुरजी मिलते भी हैं | प्रायः धामों में ऐसा होता भी है | श्रीबाबा ने उन वैष्णव से कहा कि हम अभी ब्रज में नये आये हैं, मुझे ब्रज में आये अधिक दिन नहीं हुए, इसलिए हम आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते क्योंकि आप तो ३३ ब्रजयात्रा कर चुके हैं किन्तु वे सज्जन अच्छे भक्त थे और करुणापूर्वक बोले – बाबा ! आप दिन-रात यहाँ गह्वरवन में रहते हैं, हम लोग जिसके बारे में गाते हैं – "गह्वरवन चाल्यां म्हाँ गह्वरवन चाल्यां |" वहीं आप रहते हैं, कई वर्षों से रह रहे हैं | गह्वरवन में तो कोई एक रात भी श्रीजी की अतिशय कृपा से ही रह सकता है | यह तो राधिकारानी की अन्तरंग निकुंज है, जहाँ एक रात भी रहने की महिमा नहीं कही जा सकती, वहाँ आप वर्षों से रह रहे हैं | प्रभो ! आप हमारी शंका दूर करके जाइये, ऐसा कहकर वह श्रीबाबा के आगे हाथ जोड़ने लगे | उनकी दीनता को देखकर बाबाश्री ने सोचा कि मुझे कुछ कहना अवश्य चाहिए क्योंकि वह अत्यंत विनम्रतापूर्वक जिज्ञासु भाव से पूछ रहे थे | श्री बाबा महाराज मानगढ़ पर रहते थे और धामनिष्ठा के ग्रन्थ 'वृन्दावनमहिमामृत' शतक आदि पढ़ा करते थे | श्रीबाबा ने उनसे कहा – "वैष्णवजी ! औषधि कितनी भी अच्छी हो, सेवन-विधि यदि गलत होती है तो औषधि का प्रभाव नहीं होता है | कोई दवा है, उसे शहद में यदि लेना है, शहद गर्म तासीर का होता है, उसे यदि ठंडाई में लोगे तो और नुक्सान होगा, उससे जुकाम और बढ़ जायेगा | वैसे ही ब्रजधाम, ब्रजवास एक बहुत बड़ी औषधि है लेकिन अनुपान में भिन्नता होने से, त्रुटि होने से, कोई भी साधन ठीक फल नहीं देता है |

क्रमशः

मनुष्य राग करता है या द्वेष करता है । गलत जगह राग करता है और गलत जगह द्वेष करता है । संसार से राग करता है और भक्तों से द्वेष करता है ।

भक्त-चरित्र

(मदनमोहन से मोहित ताज खाँ)

श्रीबाबामहाराज के एकादशी-सत्संग (४/३/२०१२) से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री, लेखिका- बाल-व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी, मान मन्दिर, बरसाना)

श्रीभागवतजी में शुकदेव जी ने जब स्तुति की तो उसमें कहा है **किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।**
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाःशुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥
(श्रीमद्भागवतजी २/४/१८)

भक्ति में जो शक्ति है उसको समझना बहुत कठिन है, जिसके कारण भगवान् भी भक्त के नौकर बन जाते हैं और ऐसे भक्तों का आश्रय (शरणागति) यदि अति पापी, अधम जीव भी ग्रहण कर लें तो वे भी परम पवित्र हो जाते हैं | तो शुकदेव जी ने ये श्लोक कहा कि हम भगवान् और भक्ति की महिमा का हम क्या वर्णन करें? भक्तों की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता | भक्तों के पास कोई भी किसी भी जाति का नीचा-ऊँचा पतित-पापी पहुँच जाता है तो वह पवित्र (शुद्ध) हो जाता है | भगवान् तो दूर की बात है, उनके भक्तों में यह शक्ति होती है – किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा, किरात माने जंगली लोग जो मनुष्य को बिना पकाये पकड़कर के कच्चा खा जाते हैं | हूण, आन्ध्र, पुलिन्द्र, पुलकश, ये सब जंगली जातियाँ हैं – 'आभीरकङ्कायवनाः खसादयः' अहीर, मुसलमान, कंक, खस, बड़े-बड़े पापी चंडाल भी - 'येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः' यदपाश्रय माने भक्तों के पास पहुँच जायें तो शुद्ध हो जाते हैं, ये नहीं सोचना चाहिए कि ये मुसलमान है, चोर है, डाकू है, हत्यारा है, जिसका भगवान् के भक्तों से सम्बन्ध हो जाता है, वह शुद्ध (पवित्र) हो जाता है | रसखानजी मुसलमान (पठान) थे, लेकिन भगवान् के भक्तों के संग से शुद्ध होकर भक्त बन गए | भगवान् की भक्ति में हिन्दू, मुस्लिम, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सबका अधिकार है, भगवान् सबके हैं, सभी पर दया करते हैं | रैदास भक्त चमार थे और भगवान् 'ब्राह्मणों' को छोड़कर के इनकी गोद में चले गये, बड़े-बड़े काशी के पंडित हार मान गये | गोराई कुम्हार माट-मटका बनाते, गरीब थे लेकिन ठाकुरजी ने उनको पसंद किया और वे भक्त माने गए | नामदेवजी छीपी (रंगरेज) निम्न जाति के थे, बचपन में भगवान् ने इनके हाथ से दूध पिया | इसी तरह से आज से लगभग ढाई सौ साल पहले करौली रियासत में 'ताज खाँ' नामक मुस्लिम भक्त हुए हैं | करौली में सनातन गोस्वामी के सेव्य ठाकुर मदनमोहन जी का मंदिर है जैसे रूप गोस्वामीजी के आराध्य गोविन्ददेवजी का मन्दिर जयपुर में है | मदनमोहनजी और गोविंददेवजी दोनों ही ब्रज के ठाकुर हैं | मुस्लिम हमलावरों के आक्रमण के समय ब्रज के कई सिद्ध अर्चाविग्रह भक्तों के द्वारा राजस्थान पहुँचा दिए गये | जहाँ-जहाँ भी ये ब्रज के ठाकुर पहुँचे, उन स्थानों में भक्ति का व्यापक प्रचार हुआ | सं.१७८७ में करौली के राजा गोपाल सिंह जी हुए हैं, उनके समय में मदन मोहन जी वृन्दावन से करौली में गये हैं | भगवान् कब कृपा कर देता है, इसको कोई जान नहीं सकता | पिछले जन्म के कर्मानुसार भक्ति मिलती है, हमको ऐसा प्रतीत होता है कि यह तो अभी नया भक्त हुआ है | भक्त की यदि मृत्यु भी हो जाती है तो अगले जन्म में उसको अपने आप भक्ति मिल जाती है और धीरे-धीरे चाहे अनेकों जन्म व्यतीत हो जाएँ परन्तु एक दिन भक्त को अवश्य ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है | ताज खाँ करौली में रहते थे, ये मुसलमान थे और अदालत में चपरासी थे | प्राचीन मुस्लिम शासनकाल में अदालतों का सम्पूर्ण कार्य उर्दू में होता था और अधिकतर लिखने-पढ़ने का काम पेशकार लोग करते थे, जो मुस्लिम होते थे | ताज खाँ अदालत से फरमान लेकर प्रतिदिन गोस्वामीजी के पास जाते थे | गोस्वामीजी मन्दिर के मालिक थे और प्रतिदिन कचहरी के कागज उनके पास जाते थे | करौली के राजा गोपाल सिंह भी गोस्वामीजी का सम्मान करते थे | एक दिन जब ताज खाँ कागज लेकर मन्दिर पहुँचे तो वहाँ गोस्वामीजी बैठे थे | ताज खाँ पहुँचे और उन्होंने

हे नाथ मैं ! डूब रहा हूँ, मुझे उबारो, हे दाता उबारो, हे करुणा सिधो ! तू तो दया का सागर है, एक बूँद मुझे भी दे दे ।

गोस्वामीजी को प्रणाम किया | गोस्वामीजी ने ताज खाँ से पूछा – "कहो ताज खाँ, कैसे आये ?" ताज खाँ ने कहा – "हुजूर ! कुछ फरमान हैं, इनको आप पढ़ लीजिये |" गोस्वामीजी कागज पढ़ने लगे, वहीं उनकी खिड़की से मदनमोहनजी दिखाई पड़ते थे | गोस्वामीजी को कागज पढ़ने में कुछ देर हो गयी | ताज खाँ खिड़की से मदनमोहनजी के दर्शन करने लगे | मदनमोहन जी ने उनके ऊपर दया कर दी और अपने वास्तविक रूप की एक झाँकी उन्हें दिखा दी | इस संसार में ऐसा कौन है जो भगवान् के दर्शन करके मोहित न हो | ताज खाँ ने मदनमोहनजी के जिस रूप का दर्शन किया, उसे इस प्रकार गाया –

माथे पै मोर मुकुट सुंदर प्रकाश रह्यो,
कौन कहै सुघराई वक्र बनी मनमोहन की |
सुंदर कपोलन पे छिटक रही कारी लट,
मत्त मनहारी प्यारी लागै अति सोहन की ||
या दत्त धारे गिरिधारी गल सुंदर अति,
मोतिन के हार विलुलित दुति जोहन की |
बांयें अंग श्यामा विराजें अंग दांयें ललिता,
मन अटकायो ऐसी मूरति मदन मोहन की ||

ठाकुरजी के ऐसे सुंदर रूप का दर्शन करके ताज खाँ का मन उस रूप माधुरी में ऐसा अटका कि वह पागल हो गये, उस दिन से उनका इस्लाम धर्म छूट गया और वह प्रतिदिन ठाकुरजी के दर्शन करते | मदनमोहनजी के मन्दिर में हर दिन उनकी कई झाँकियाँ होती थीं, ताज खाँ हर झाँकी का दर्शन करने चले जाते थे, उन पर मदनमोहनजी की कृपा हो गयी थी अतः उनको हर झाँकी में मदनमोहनजी के वास्तविक रूप के दर्शन होते थे, वह घंटों तक उनके दर्शन के लिए खड़े रहते थे | भगवान् इतने सुंदर हैं कि एक बार उन पर नजर चली जाये तो हटेगी नहीं | ताज खाँ के जितने साथी मुसलमान थे, उन्होंने उन्हें अपनी जाति से निकाल दिया और कहा कि यह तो काफ़िर हो गया है और हिन्दुओं के भगवान् का भजन करता है इसलिए इसे इस्लाम धर्म से बाहर कर दो | ताज खाँ के भाई-बंधुओं ने भी उन्हें घर से भगा दिया लेकिन ये डरे नहीं | भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था में डर लगता है कि घर वाले निकाल देंगे लेकिन जिसका भगवान् से सुदृढ़ प्रेम हो जाता है, वह दुनिया से बिल्कुल नहीं डरता है, दुनिया उसे क्या छोड़ेगी, वह स्वयं ही दुनिया को छोड़ देता है | इसी भाव से भावित श्रीबाबामहाराज द्वारा संरचित एक पद (गजल) है –

लगन हरि सो लगा बैठे जो होगा देखा जायेगा |
उन्हें अपना बना बैठे जो होगा देखा जायेगा ||
कभी ये ख्याल था दुनिया हमें तो छोड़ बैठेगी,
आज खुद दूर जा बैठे जो होगा देखा जायेगा |
लगन हरि से .....

घर वालों और अन्य साथी मुसलमानों ने ताज खाँ को निकाल दिया कि यह हिन्दुओं के खुदा मदनमोहन को देखा करता है | घर वालों के निकाले जाने पर ये मदनमोहनजी के मन्दिर चले गये | मन्दिर के पहरेदारों ने इन्हें मन्दिर के अंदर प्रवेश नहीं करने दिया और बड़े जोर से फटकार लगायी – "अरे ऽ ऽ ऽ ! मुसलमान होकर मन्दिर में कैसे घुसता है, भाग जा यहाँ से |" प्राचीनकाल में मन्दिरों में बहुत कड़ा शासन होता था | अब ताज खाँ तो मन्दिर से भी निकाल दिए गये और घर से भी निकाल दिए गये | मन्दिर के बाहर एक कमरा था, ताज खाँ उसी कमरे में जाकर भूखे-प्यासे पड़े रहे | अन्न-जल ग्रहण नहीं किया | उस कमरे में वह दिन-रात मदनमोहनजी का नाम रटते रहे | ठाकुरजी ने उनकी परीक्षा ली थी किन्तु चौथे दिन उन्होंने सोचा कि यह तो बिना कुछ खाए-पिए यूँ ही मर जायेगा लेकिन ताज खाँ ने अपना हठ नहीं छोड़ा क्योंकि उनको प्रभु की लगन लग गयी थी | चौथे दिन स्वयं मदनमोहनजी ने मन्दिर के टहलुआ (नौकर) का रूप बनाया और आधी रात को उस कमरे का दरवाजा खटखटाया और बोले – "अरे ! ताज खाँ भीतर है क्या ?" ताज खाँ ने पूछा – "अरे ! कौन हो भाई ?" ठाकुरजी बोले – "मैं हूँ, दरवाजा तो खोलो |" ताज खाँ – "मैं दरवाजा नहीं खोलूँगा |" ठाकुरजी – "क्यों ?" ताज खाँ – "मुझे मन्दिर वालों ने बाहर निकाल दिया है और घर

किसी भी जीव का भरोसा करोगे तो सच्चे सेवक नहीं बन पाओगे । सिर्फ एक प्रभु को पकड़ो ।

वालों ने भी निकाल दिया है, अब मैं दुनिया में रहने लायक नहीं हूँ, मेरा कोई नहीं है दुनिया में |" टहलुआ रूपी ठाकुरजी ने कहा – "अरे भाई ! दुनिया ने ही तो तुझे निकाला है, मदनमोहनजी ने तो नहीं निकाला है |" ताज खाँ – "मदनमोहनजी ने भी निकाला है क्योंकि उनके मंदिर से मुझे धक्के मारकर बाहर कर दिया गया |" ठाकुरजी – "धक्के देने वाले भक्त नहीं थे, अरे ! देख, मदनमोहनजी ने तेरे लिए प्रसाद भेजा है, मैं उनका टहलुआ (नौकर) हूँ |" ताज खाँ – "अच्छा ऽऽऽ !!! तुम्हें मदनमोहनजी ने भेजा है ?" ठाकुरजी – "हाँ....|" यह सुनकर ताज खाँ ने दरवाजा खोल दिया | उस समय ठाकुरजी मन्दिर के सेवक की भाँति वेश बनाये थे और चाँदी के पात्र में मदनमोहनजी का प्रसाद लिए खड़े थे | ठाकुरजी बोले – "ताज खाँ ! अब तुझको विश्वास हो गया, देख - यह मंदिर के भोग का थाल है |" ठाकुरजी के हाथ में बहुत बड़ा चाँदी का थाल था, उसे देखकर ताज खाँ को विश्वास हो गया और वह बोले – "हाँ, यह थाल तो मदनमोहनजी ने भेजा है, मैंने मान लिया |" उधर दूसरी ओर ठाकुरजी ने मन्दिर के गोस्वामीजी को स्वप्न में कहा – "मेरा भक्त तीन दिन से भूखा-प्यासा पड़ा है और तुम लोगों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया | कल वह मन्दिर में मेरे भोग का थाल देने आयेगा |" इधर ताज खाँ के सामने टहलुआ (सेवक) रूपी ठाकुरजी बोले – "यह छप्पन भोग तेरे लिए है, अब इसे आराम से बैठकर खा ले | तीन दिन से तूने कुछ खाया-पिया नहीं है, अब तू आनंदपूर्वक भोजन कर और सुबह मन्दिर में थाल ले आना | अब मैं जा रहा हूँ |" ऐसा कहकर मदनमोहनजी तो चले गये और ताज खाँ भोजन करने लगे | यह छप्पन भोग का बड़ा ही दिव्य प्रसाद था | ताज खाँ तीन दिन से भूखे थे अतः शीघ्र ही सब भोजन खा गये | खाने के बाद उन्होंने थाल को साफ़ किया | उधर मन्दिर के पुजारी ने हल्ला मचा दिया कि मदनमोहन जी के भोग का थाल चोरी हो गया है | वह चोरी नहीं हुआ था, उसे तो ठाकुर जी ताज खाँ के पास ले गये थे | किन्तु बिना बताये ले गये थे तो यह चोरी तो मानी ही जायेगी | पुजारी ने कहा कि ऐसा सुनते हैं कि वह चोर सुबह आयेगा | उसने अपनी चोरी को स्वीकार कर लिया है | उसी समय गोस्वामी जी भी अदालत से मन्दिर में आये और राजा साहब भी वहाँ आये क्योंकि ठाकुरजी ने गोस्वामीजी से स्वप्न में कहा था कि मेरा भक्त सुबह मन्दिर में आयेगा | ठाकुरजी की बात सुनकर गोस्वामीजी और राजा साहब मन्दिर में खड़े होकर उस भक्त की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह भक्त थाल लेकर मन्दिर में कब आयेगा ? ठीक सुबह ताज खाँ ठाकुरजी के भोग का थाल साफ करके मन्दिर में पहुँचे | वहाँ उनके परिचित बहुत से मुसलमान भी खड़े थे, उन लोगों ने समझा कि यह ताज खाँ के खिलाफ षडयंत्र है | जैसे ही ताज खाँ मन्दिर में पहुँचे तो राजा साहब ने उनको गले से लगा लिया क्योंकि जिसके लिए भगवान् भोग का थाल ले गये थे, वह निश्चय ही उच्च कोटि का भक्त है | गोस्वामी जी ने भी प्रेम से ताज खाँ का आलिंगन किया | राजा साहब बोले – "ताज खाँ ! मुझे क्षमा कर दो, तुमको मन्दिर से धक्का देके निकाला गया |" ताज खाँ बोले – "महाराज ! वह टहलुआ कहाँ है ?" राजा साहब – "कौन टहलुआ ?" ताज खाँ – "जो रात को मेरे पास थाल लेकर गया था |" अब राजा साहब को क्या पता कि मदनमोहनजी ही टहलुआ का वेश बनाकर ताज खाँ के पास गये थे | गोस्वामीजी समझ गये कि मदनमोहनजी ही टहलुआ बनकर गये थे, उनके अलावा रात को इस प्रकार और थाल कौन ले जा सकता था, यह तो ठाकुरजी की ही माया है | गोस्वामीजी ने मन्दिर में मदनमोहनजी की ओर संकेत करके कहा – "टहलुआ तो वह खड़ा है |" ताज खाँ ने मदनमोहनजी की ओर देखा तो उन्हें वही दर्शन हुआ जैसे पहले हुआ करता था –

माथे मोर मुकुट सुंदर प्रकाश रहो, कौन कहै सुघराई वक्र बनी मनमोहन की |

सुंदर कपोलन पे छिटक रही कारी लट,
मत्त मनहारी प्यारी लागै अति सोहन की ||
या दत्त धारे गिरिधारी गल सुंदर अति,

जब तू बूढ़ा होगा तो तेरे मरने से पहले ही परिवार वाले तुझे छोड़ देंगे । यहाँ तक कि तेरी चमड़ी भी तेरा साथ छोड़ देगी ।

सारा संसार स्वार्थ का है । तू क्यों नहीं समझता कि साथी तो केवल एक वही 'कृष्ण' है ।

मोतिन के हार विलुलित दुति जोहन की |
बांयें अंग श्यामा विराजें अंग दांयें ललिता,
मन अटकायो ऐसी मूरति मदन मोहन की ||

ताज खाँ को इस रूप में ठाकुरजी का दर्शन हुआ | दर्शन के बाद राजा साहब ने ताज खाँ से कहा – "अब तुमको मन्दिर से कोई नहीं निकालेगा, तुम जीवन भर यहीं मन्दिर में रहो और ठाकुर जी का प्रसाद पाओ |" ताज खाँ ने अनेक पद बनाये हैं, जिसमें मदनमोहनजी के बारे में भी पद-रचना की है, उनमें एक रचित पद इस प्रकार से है –

लगन जो लागी नाथ ताको विस्तार कहा,
भूख प्यास निद्रा कछु बाधत नहीं साँवरे |
अब मुझे न भूख लगती है, न प्यास |
मदनमोहन मूर्ति को वेग दरसावो आप,
एक-एक क्षण कोटि कल्प सम जाव रे ||
सुंदर कटाक्ष तेरे निरखत आनन्द होत,
मेरी कही मान नैन नयनन ते मिलाव रे |
दरस को भिखारी 'ताज' ताकी प्रभु अरज सुनो,
नन्द के दुलारे यार चाकर हम राव रे ||

अरे नन्द के दुलारे ! हम तो तेरे यार हैं, चाकर हैं, हमें अपने दर्शन करा दे |

मदनमोहनजी ने ताज खाँ को दर्शन कराया | ताज खाँ जब तक जीवित रहे, मदनमोहनजी के मन्दिर में ही रहे और अंत में उन्होंने भगवान् की प्राप्ति की | वहाँ मदनमोहन के मन्दिर में आज भी लिखा है –

ताज भक्त मुस्लिम पै प्रभु तुम दया करि |
भोजन ले घर पहुँचे दीनदयाल हरि ||

इसी भाव को श्रीशुकदेव जी ने भी कहा है – (श्रीमद्भागवतजी २/४/१८) भगवान् की अनुपम, अनन्त कृपा है कि यवन आदि अधम जातियाँ भी भगवान् या उनके भक्तजनों के आश्रय से परम पावन हो जाती हैं | उन भगवान् को नमस्कार है जिनके भक्तजनों में ही इतनी सामर्थ्य होती है कि महापापियों का भी उद्धार हो जाता है | भक्तों के पास यदि कोई नीच पुरुष पहुँच जाये तो भी उससे घृणा नहीं करनी चाहिए, उसकी पूजा करनी चाहिए | भगवान् के भक्तों से जिसका प्यार है, वह भगवान् के प्यार से भी ज्यादा बड़ा है | (क्रमशः)

पिताहमस्य जगतो माता.....यजुरेव च ॥

(गी. ९/१७)

आप ही नाथ हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही माँ हैं, आप ही बन्धु हैं पर हृदय से आपको अपना नहीं माना और संसार के जीवों को ही अपनी माँ-बाप, पुत्र आदि माना, उनसे ही मैंने सब सम्बन्ध जोड़े । अगर आपसे सम्बन्ध जोड़े होते तो ऐसी भूल क्यों होती? मैं फिर इतना कष्ट क्यों पाता?

आपने यही बात अर्जुन को कही थी कि संसार में न कोई बाप है और न माँ है, मैं ही सबका सब कुछ हूँ पर मैंने ये बात नहीं मानी । हे नाथ ! मैं अब तेरी शरण में आया हूँ, तू मुझ पर दया कर दे ।

हे नाथ ! कोई कुँआ खोदने लग गया और कुँआ खोदते-खोदते मर गया पर उसकी प्यास नहीं गयी और वो प्यासा मर गया । ऐसे ही संसार में सब जीव हैं । प्यास बुझाने के लिए पैसा कमाते हैं, ब्याह रचाते हैं पर देखो - बूढ़ों को, ये प्यासे ही मर जाते हैं, उनकी प्यास कभी नहीं बुझती । सारा जीवन उनका कुँआ खोदते-खोदते बीत गया । उसमें ही उनकी सब शक्ति चली गयी फिर भी वो प्यासे ही मरते हैं ।

अगर तुमने कृपा नहीं की तो मैं भी ऐसे ही प्यासा मर जाऊँगा । हे नाथ ! इस शरीर से न मैं आराधना कर सकता हूँ और न ही संयम कर सकता हूँ । जैसे खेत को जोतते-जोतते बैल हार कर गिर जाता है, वैसे ही मैं भी हारकर गिर गया हूँ । कब मेरे सामने आपका सुन्दर सौन्दर्य आयेगा? आप मुझे कब दर्शन दोगी ।

गौ-महिमा

(गौ-सेवक-स्नेही 'गोपाल')

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'गौ-महिमा' (१५/०७/२०१२) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री, लेखिका- साध्वी नवलश्रीजी, मान मन्दिर, बरसाना)

श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन-मिलन की आकांक्षा से विरहावेश में श्रीजी की सन्निधि में ब्रजगोपिकाओं ने कहा है –

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैः,वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुः,मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥

(श्रीमद्भागवत१०/३१/१२)

संध्या के समय गोधूलि बेला में कृष्ण के नील मुखकमल पर काली-काली लटूरियाँ (घुंघराली अलकें) लटक रही हैं | वे लटूरियाँ गायों की धूल से भरी हैं, कृष्ण गोधूलि से इतना प्यार करते हैं कि गायों की चरणरज से उनकी घुँघराली अलकें और उनका मुखमंडल भर जाता है | गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि तुम हमें गौरज से भरा मुखकमल बार-बार दिखाते हो, उस दर्शन से हमारे मन में काम उत्पन्न होता है | तुम्हारा कमल की तरह जो मुख है, वह लटूरियों से ढका है और लटूरियाँ गौरज से ढकी हुई हैं | इस तरह के दर्शन से तुम हमारे मन में मिलन की आकांक्षा जाग्रत कर देते हो | गौधूल से सने श्यामसुंदर जब संध्याकाल में वन से लौटते हैं तो उस समय की शोभा का वर्णन महापुरुषों ने किया है –

धूसरि धूरि भरे हरि आवत,कांधे लकुट कामरी कारी |
लट उरझी मन भावत, गल वनमाला हाथ लकुटिया |
मुरली मधुर बजावत,धुनि सुनि वेणु सबै ब्रजवनिता
देखन को जुड़ि धावत ||

श्रीमद्भागवत में कई जगह वर्णन आता है, जैसे - युगलगीत में गोपियाँ कहती हैं –

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्तेगीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥

(श्रीभागवतजी १०/३५/२२)

श्रीकृष्ण गौधूलि के समय आ रहे हैं | गोपियाँ कहती हैं कि गायों के प्रेम के कारण, गायों की रक्षा के लिए वह गिरिराज धारण करते हैं |

"गायन के हेत गिरि कर पै उठावै ||"

गोपियाँ कहती हैं कि जब गोपाल वन से लौटते हैं तो बड़े-बड़े देव ब्रह्मा-शिवादि रास्ते के दोनों ओर हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं कि गोपालजी जा रहे हैं | दिन के अंत के समय संध्याकाल गोविन्द गायों को वन से लौटाकर ब्रज में ला रहे हैं | ग्वालबाल तो कृष्ण की लीला गा रहे हैं और स्वयं श्रीकृष्ण वंशी में राधा-राधा गा रहे हैं, जैसे – सूरदासजी कहते हैं –

रजनी मुख बन ते बने |
आवत भावत मंद गयन्द की लटकन ||

श्रीकृष्ण गजराज की सी चाल से चलते हुये चले आ रहे हैं |

"बालक वृन्द विनोद हँसावत |"

गोपाष्टमी के दिन अब भी नंदगाँव में जब श्रीकृष्ण वन से लौटते हैं तो ग्वालबाल उनको हँसाते हुए लाते हैं क्योंकि यशोदा मैया ने उनसे कहा था कि हमारे लाला को हँसाते हुए लाना | नंदगाँव में परम्परा है, वहाँ ग्वालबाल गाते हैं-

गाय चराय घर लावै, कान खुजावत आवै,
आवै री मेरो लटकन लाल |
बरसाने की लावै, राधा प्यारी आवै,
आवै री .....

ग्वालबाल गोपाल को हँसा रहे हैं –

"लकुट धेनु की हटकन |"

गायों को हटक (हाँक) के ले जा रहे हैं, मार्ग में गोपियाँ खड़ी हैं | भागवत में वर्णन है –

प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः
समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥

हे नाथ ! मेरे पर भी दया कर दो,
मुझे भी पार कर दो ।

(श्रीमद्भागवत १०/४४/१६)

गोपियाँ दौड़ पड़ती हैं और कहती हैं - कन्हैया आ रह्यो है, सुमधुर वंशी बज रही है |

बिकसत गोपी मनो कुमुद सर रूप सुधा लोचन पुट घटकन |
पूरण कला उदित मनो उडुपति तेहि छिन विरह व्यथा की चटकन ||
लज्जित मन्मथ निरख बिमल छवि,रसिक रंग भौंहन की मटकन |
मोहन लाल छबीलो गिरधर, सूरदास बलि नागर लटकनि ||

इस तरह से श्यामसुंदर संध्याकाल वन से लौटते हैं, ब्रह्मा-शंकर आदि देव उनके दर्शन के लिए मार्ग में दोनो ओर खड़े होकर कृष्ण को प्रणाम करते हैं |

कहि-कहि बोलत धौरी कारी देखो भाग्य गायन के |
प्रीति करत बनवारी मोटी भयीं चरत वृन्दावन ||

नंदलाल की गायें बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हैं |

नंदकुवर की पाली |
काहे न दूध देहिं ब्रज-पोषन, हस्त कमल के लाली ||

लाल-लाल करकमल से गोविंद गायों का दूध दुहते हैं

बैन श्रवण सुनि गोवर्धन तृण, दीन्हों धारि चाली |
तबहिं बेगि भाए सूरज प्रभु, क्यों भजै जे न पाली ||

इस तरह से गौ-सेवा से अनन्त अश्वमेध यज्ञों के बराबर फल मिलता है, ब्रजभूमि की शोभा बढ़ाने वाली इस सेवा को स्वयं श्रीश्यामसुन्दर परम प्रसन्न होते हैं और उनका दर्शन तो स्वतः सहज हो जाता है | श्रीनाथजी केवल दर्शन ही नहीं देते, गौ-सेवक को तो अपने साथ ग्वालमंडली में बैठाकर भोजन कराते हैं, सदा के लिए अपना आत्म- सम्बन्धी बना लेते हैं | इसलिए वे लोग बड़भागी हैं जो निष्ठा से गौ-सेवा करते हैं, उन पर अवश्य गोविंद की असीम अनुकम्पा है | (क्रमशः)

आप साधना चैनल पर प्रात:०६ :४० से पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज एवं प्रात: ०७ :०० बजे से ब्रजबालिका श्रीजी का नित्य सत्संग देख सकते हैं |

॥ साधना ॥ ॥ साधना ॥ ॥ साधना ॥ ॥ साधना ॥

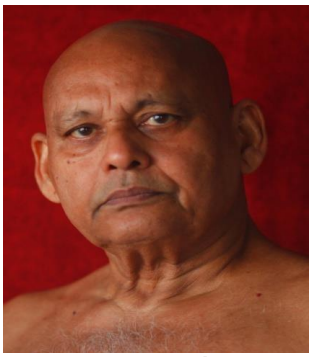

श्याम का मुख कितना मीठा है, कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, मीठी-मीठी मुस्कान है, श्याम की बोलन कितनी मीठी है, उसकी लीला कितनी मीठी है, पीताम्बर कितना मीठा है, पीताम्बर की लपेटन कितनी मीठी है, अरे ! भगवान् की बंसी कितनी मीठी है, भगवान् के कर कमल कितने मीठे हैं, चरण कितने मीठे हैं, जिनकी लक्ष्मी भी दिन-रात सेवा करती हैं । कैसा सुंदर नाचता है कान्हा ! ऐसा मीठा-मीठा है श्याम । अरे ! हम कहाँ तक कहें, ऐसा मीठा जब हमारे हृदय में आ जाय तो संसार के सब रंग फीके हो जायेंगे ।

प्रातःकालीन सत्संग

(परमधर्म-पालन ही सनातन-संस्कृति)

श्रीबाबामहाराज के प्रातःकालीन सत्संग (१४,१५/१२/२००६) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री, लेखिका- साध्वी ललिताजी, मान मन्दिर, बरसाना)

अहंता-ममता, राग-द्वेष आदि विकारों के रहते कोई अनन्य बन ही नहीं सकता | अंग्रेजी में एक शब्द है - superiority complex – अर्थात् स्वयं 'अपने आप' ही अपने को ऊँचा समझ लेना | ऊँचे हैं नहीं लेकिन अपने को ऊँचा समझ लिया | ये सब मिथ्या 'अहं' की वैरायटी (variety) हैं | यह कल्पित अहं, असत् अहं है कि अपने को ऊँचा समझ लिया कि हम विरक्त महाराज हैं | यह भी अहं है कि हम अपने को ऊँचा समझें, साधु समझें - भक्त समझ लें, रसिक समझ लें | हमने देखा है कि समाज में अधिकतर यही सिखाया जाता है | छोटी-मोटी अक्ल का गुरु यही सिखाता है | जैसे - मुसलमानों में सिखाया जाता है कि जो कुरान को नहीं मानता, वह काफिर है और काफिर को मारना ही धर्म है | अब इन्होंने अपने को इतना ऊँचा मान लिया, बाँकी संसार इनके लिए काफिर हो गया | वैसे ही उसी की वैरायटी हमारे यहाँ भी है कि हम अपने को झूठे ही इतना अनन्य मान लें कि बाकी सब संसार अनन्य नहीं है और फिर उसमें भेदबुद्धि, दुर्बुद्धि करते रहते हैं, ये सब कल्पित अहं है, superiority complex है, अपने को इतना ऊँचा मान बैठे, इससे सब भजन नष्ट हो जाता है | देखा जाए तो भजन का नाश हम जैसे गुरु लोग ही सिखाते हैं कि तुम अपने को इतना ऊँचा समझ लो, इस प्रकार 'अहं' स्वयं पैदा करवाते हैं, इससे तप नष्ट हो जाता है, सब भजन-साधन नष्ट हो जाता है | विषयासक्ति तो है ही गन्दी लेकिन ममता किसी भी प्रकार की है, यह भी गन्दगी है | ये मेरी माँ है, ये मेरा बाप है, ये मेरा भाई है, बहन है - यह मेरापन की भावना ही गन्दगी है | लोग भ्रम में हैं कि हम तो अपनी माँ की सेवा करते हैं; माँ की सेवा, बाप की सेवा करो लेकिन उसमें से 'मेरापन' हटा दो | ऐसा नहीं कहा गया कि अपनी स्त्री को घर से बाहर निकाल दो परन्तु उसमें से मेरापन हटा लो, उसका पालन-पोषण करो | ये देखा जाता है कि हमलोग तो मेरापन नहीं हटा पाते लेकिन पशु-संस्कृति में बहुत जल्दी मेरापन हट जाता है | श्रीबाबामहाराज उदाहरण देते हैं कि बहुत वर्षों पहले उनके पास इंग्लैंड से कोई लड़की आती थी | वह हर साल मानगढ़ आती थी और बाबा महाराज से बात भी करती थी | एक दिन श्रीबाबामहाराज ने उससे कहा कि तू हर साल भारत आती है जबकि हवाई जहाज से यहाँ आने में तो बहुत किराया लगता है | तुम करती क्या हो? वह बोली – "मैं अपने देश में कार चलाती हूँ, उसी से पैसा कमा लेती हूँ |" श्रीबाबा ने पूछा – "तुम वहाँ कहाँ रहती हो ?" तो वह लड़की बोली कि अपने पिता के पास रहती हूँ | श्रीबाबा ने कहा कि चलो, तुमको रहने की सुविधा है | वह बोली – "मैं तो कहीं भी रह सकती हूँ, मैं अपने पिता को भी किराया देती हूँ, खाने-पीने का भी पैसा देती हूँ |" श्रीबाबा महाराज ने आश्चर्य से पूछा – "अरे ! तेरा बाप तुझसे किराया लेता है |" वह लड़की बोली – "हाँ |" श्रीबाबा ने कहा – "इस भारत देश में तो पिता अपनी बेटी का धन छुयेगा भी नहीं |" वह लड़की बोली कि वहाँ जब बेटा-बेटी बड़े हो जाते हैं तो मुफ्त में माँ-बाप के पास नहीं रह सकते | श्रीबाबा ने कहा – "तुम्हारे देश में धर्म का निर्वाह नहीं है | हमारे देश (भारतवर्ष) में पिता और कन्या का निर्वाह है | कितनी उदारता है 'भारत माता' में.....!! कितना विशाल हृदय है 'सनातन भारतीय-संस्कृति' का.....!!!

तुम्हारे यूरोप में निर्वाह कहाँ होता है ? थोड़ी-सी देर में स्त्री-पुरुष में तलाक हो जाता है, ये कोई निर्वाह नहीं है, हमारे यहाँ (भारत में) तो सारे जीवन स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को निभाते हैं |"

(क्रमशः)

'मान मंदिर कला अकादमी' द्वारा प्रस्तुत नाटिका- भक्त' श्री रैदासजी'

(संकलनकर्त्री, लेखिका- साध्वी माधुरीजी, मान मन्दिर, बरसाना)

ब्रजेश्वरी श्रीराधारानी के नित्यधाम बरसाना में उनके दिव्य करकमलों से निर्मित उनके नित्यविहार विपिन गह्वरवन स्थित आराधना-भवन रसमंडप में १६ सितम्बर २०१८ को श्रीराधाष्टमी के परममंगलमय अवसर पर **'श्रीमानमंदिर कला अकादमी'** द्वारा **संत श्रीरैदासजी** के जीवन-चरित्र पर आधारित नाटिका का मंचन किया गया | श्रीरामानन्दसागर के सुप्रसिद्ध दूरदर्शन धारावाहिक 'रामायण' में भरतजी का अभिनय करने वाले अभिनयकला के विशेष मर्मज्ञ 'श्रीदिलीप मेहराजी' द्वारा इस नाटिका का निर्देशन किया गया | पूज्य श्रीबाबामहाराज की प्रेरणा से सन् २०११ से 'राधाष्टमी' और 'बरसाने की रंगीली होली' के परमपावन सुअवसर पर प्रतिवर्ष ब्रजसंस्कृति और भक्तचरित्र की महिमा को प्रदर्शित करने हेतु नाटिका का मंचन किया जाता है | परम संत रैदासजी भगवान् श्रीराम के अवतार श्रीरामानन्दाचार्यजी के शिष्य थे | शूद्रकुल में उनका जन्म हुआ था, वह एक चर्मकार थे, अतः वंशानुगत पेशा जूते-चप्पल सुधारने का कार्य किया करते थे | गृहस्थ जीवन को अंगीकार करके भी वह भगवान् के शुद्ध भक्त थे, मायिक प्रपंच की आसक्तियों से पूर्णतया विमुक्त होकर अपनी धर्मपत्नी परमभक्तिमती प्रभुताजी के साथ विशुद्ध भक्तिभावमय जीवन-यापन करते थे, उनके विशुद्ध प्रेम-भक्ति के कारण सहज ही में उनके द्वारा ऐसे चमत्कार प्रकट हुए जिससे लोगों को उनकी वास्तविक महिमा का परिचय हुआ | 'मानमंदिर कला अकादमी' द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली नाटिका में मानमंदिर सेवा संस्थान के संत-साध्वियाँ, गुरुकुल के बालक-बालिकाओं तथा पूज्य श्रीबाबामहाराज के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा से युक्त वैष्णवजन निःशुल्क रूप से नाट्याभिनय करते हैं | केवल एक सप्ताह में ही वे सम्पूर्ण नाटिका के लिए वे इस प्रकार तैयारी करते हैं कि अंतिम दिन मंचन के समय भक्त-चरित्र का प्रस्तुतिकरण 'श्रीजी की कृपा' से परमदिव्य हो जाता है, जो दर्शकों के हृदय में प्रेममयीभक्ति का बीजारोपण कर देता है | 'संत रैदास जी' के चरित्र पर आधारित इस नाटिका का रात्रि ८.३० बजे से शुभारम्भ हुआ और रात्रि १.३० बजे तक सतत् चलता रहा | रसमंडल हॉल श्रद्धालु भक्तों से पूर्णतया भरा हुआ था और ५-६ घंटे दीर्घरात्रि तक भी दर्शकगण मंत्रमुग्ध से होकर संत रैदास जी द्वारा अस्पृश्यता (छुआछूत) के घोर भेदभाव युक्त वातावरण में विशुद्ध रसमयीभक्ति की क्रान्ति का जागरण कर देनें वाले परम भक्तिमय जीवन-चरित्र को देखते रहे | नाटिका के समापन पर पूज्य महाराजश्री ने दर्शकों के प्रति अपने आशीर्वचन स्वरूप ये उद्गार व्यक्त किये –

संत रैदास जी की नाटिका का सार – विशुद्ध प्रेममयी भक्ति ही है, जहाँ किसी भी प्रकार का कोई सांसारिक बन्धन नहीं है; इसी भाव से भावित प्रह्लादजी, सूरदासजी आदि प्रेमीभक्तों का भी जीवन-चरित्र है |

भक्तराज प्रह्लादजी के चमत्कारिक भक्तिमय व्यक्तित्व के कारण असुर बालक उनसे बहुत अधिक प्रभावित हो गये थे, उन्होंने अपना आसुरी भाव छोड़ दिया तथा विशुद्ध भक्त बन गये | सूरदासजी ने भी अपने पद में प्रह्लादजी द्वारा असुर बालकों के प्रति प्रदान की गयी शिक्षा को इस प्रकार वर्णन किया है –

पढ़ो रे भईया राम गोविन्द मुरारि |
चरण कमल मन सन्मुख राखो, कबहुँ न आवै हारि |
को है हिरण्यकशिपु अभिमानी, तुम्हें सकै जो मारि |
राखनहार कोई है औरे, स्याम धरै भुज चारि ||

प्रह्लादजी के इस उद्बोधन से असुरबालकों का आसुरी भाव समाप्त हो गया | एकबार हिरण्यकशिपु ने अपने द्वारा स्थापित

असुर पाठशाला में स्वयं आकर देखा कि समस्त असुरबालक निर्भय होकर संकीर्तन-नृत्य कर रहे हैं जबकि इसके पूर्व कीर्तन तो क्या भयवश वे प्रह्लादजी के साथ एकत्रित भी नहीं हो सकते थे, आज वही बालक प्रह्लादजी के साथ रसमयी भक्ति में निमग्न थे | श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रह्लादजी ने कहा है –

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥

(श्रीमद्भागवतजी ७/७/५१)

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है, देवता अथवा ऋषि बनना भी आवश्यक नहीं है | भगवान् की प्रसन्नता के लिए सदाचार की भी आवश्यकता नहीं है | ब्रजगोपिकाओं में कोई सदाचार नहीं था

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः,
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि
साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(श्रीमद्भागवतजी (१०/४७/५९)

उद्धव जी कहते हैं जिन गोपियों में व्यभिचार था | श्रीमद्भागवत के टीकाकार विद्वान् आचार्यों ने उपरोक्त श्लोक की अपनी टीका में 'व्यभिचार' का अर्थ परिवर्तित कर दिया है | वे लिखते हैं – **'विशेषेण अभिचारः'** व्यभिचार के पश्चात् प्रयुक्त शब्द 'दुष्टाः' के अर्थ को वे नहीं बदल सके | जो दूषित हो चुकी हैं, भगवान् उनके प्रेम के आधीन होकर श्यामसुन्दर सब कुछ भूल जाते हैं | एक अन्य श्लोक में प्रह्लाद जी ने कहा है –

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥

(श्रीमद्भागवतजी ७/७/५२)

दान करना, तपस्या करना जरूरी नहीं है, केवल भगवान् प्रेम के ही आधीन होते हैं | प्रेम क्या है? यह असुर बालकों ने प्रह्लादजी से सीखकर आसुरी भाव छोड़ दिया | इसीलिए हिरण्यकशिपु समझ गया था कि यह मेरा सारा राज्य बदल देगा, इसको मैं ही मारूँगा और किसी तरह यह मरेगा नहीं | उसने प्रह्लाद जी को खम्बे से बांधकर खम्बे पर प्रहार किया और बोला –

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥

(श्रीमद्भागवतजी ७/८/१३)

बता तेरा भगवान् कहाँ है? अगर वह सर्वत्र है तो क्या वह इस खम्बे में है? मैं पहले खम्बे को ही तोड़कर तेरे भगवान् को देखूँगा | वह मदांध हो गया था | उसने खम्बे पर वार किया तो खम्बा टूट गया, उससे नृसिंह भगवान् प्रगट हुए | वही बात यहाँ रैदास जी के जीवन में भी मिलती है, इसलिए श्रीसूरदासजी ने कहा है –

वासुदेव की बड़ी बड़ाई |
जगत-पिता, जगदीश, जगत-गुरु, निज भक्तन की सहत ढिठाई ॥
बिनु बदले उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई ॥
बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ॥

(सूरविनयपत्रिका - ४)

यह भक्त महिमा का विशेष पद है, इसे विशेष ध्यान से संक्षिप्त में ही समझ लो | उसी प्रेम की प्राप्ति के लिए हमलोग यहाँ आये हैं और अभी तो उस प्रेम की प्राप्ति नहीं हुई है, झूठ नहीं बोलना चाहिए; परन्तु इस आशा में पड़े हैं कि एक दिन श्रीजी की दया अवश्य हो जाएगी और हो रही है उनकी दया | प्रतिवर्ष हमलोग जो एकत्रित होते हैं और यह नाटक होता है, यह उनकी असीम- अहैतुकी दया से ही होता है |

अपने इष्ट के चरणों से अनुराग करो ।